अनुवाद गोपालकविराय द्वारा

॥ ओं श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री श्रीश गणेश सरस्वती गुरु द्विज हरितत्वविद् भक्तिमदभ्यो नमः ॥

॥ भगवद्रूप निखिल चराचर प्रपंचाय नमः ॥

॥ दोहा ॥

श्री सद्गुरु नानिक चरण, गुरु गोविन्द निवास ।
विद्यागुरु श्री विष्णुसखी, वंदौ पद सुखरास ॥१॥

गुरुचंद्रोदय कौमुदी, हरि गुरु रूप अभेद ।
सो भाषा चाहत लिख्यो, समझैं छूटत खेद ॥२॥

बुद्धि हीन जानत नहीं, छंद काव्य की रीति ।
गुरु हरि संत निदेस सौं, भाष्यौ होइ विनीत ॥३॥

गुरु कृत ग्रन्थ अनेक हैं, तिन मैं इह गुरु रूप ।
आपुहि हियैं प्रकाश करि, भाषौ श्री गुरु भूप ॥४॥

मोमैं तुम बिन कछु नाहीं, तुम आये सव होइ ।
ज्यौं दीपक मैं अनल विन चाँदन करै न कोइ ॥५॥

॥ छंद ॥

नमो रामनारायणानंत नामी ।
नमो आत्मानंद रूपाभिरामी ॥
नमो विष्णुसखि सर्वदा कृष्ण कामी ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमामी ॥१॥

नमो छत्रवर वंस अवतार धारी ।
नमो ब्रह्म निष्णात श्रुत्यर्थकारी ॥
नमो ब्रह्म विद्ब्रह्म भक्तानुसारी ।
[नमस्ते नमस्ते नमस्ते मुरारी] ॥२॥

नमो कृष्ण कल कीर्ति माला प्रकासी ।
नमो भागवत पद्म भाषा विकासी ॥
नमो ईश आवास्य श्रुत्यर्थ भासी ।
नमस्ते नमस्ते नमो विष्णुदासी ॥३॥

नमो सर्व सम्पन्न भक्त्यंग धारी ।
नमो वेद सर्वांग पूजा प्रचारी ॥
नमो इष्ट संकेतजीवनविहारी ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अपारी ॥४॥

नमो रास संकाश लीला विलासी ।
नमो कृष्न सन्नृत्य मंडल हुलासी ॥
नमो कांत एकांत भावन प्रकासी ।
नमस्ते नमस्ते विविध ताप नासी ॥५॥

नमो राम अभिराम अध्यातम गाइक ।
नमस्ते नमो रामगीता पुनीतार्थ भाइक ॥
नमो सर्व शास्त्रार्थ विज्ञान दाइक ।
नमस्ते नमस्ते नमो भक्त नाइक ॥६॥

नमो शांत आनंद चिद्भान दानी।
शरण्यं सदा दीन जन दुःख हानी ।।
करी पुण्य सुरलोक लीला सुहानी।
नमस्ते नमस्ते भो तत्व ज्ञानी ।।७।।

नमः चंद्रभागा सखी चंद्रमा सी।
नमो ध्वांत अज्ञान हाहा रहासी ।।
नमो कृष्ण सर्वांग पूरण कला सी।
कृपा कीजियै जानि कैं चर्ण दासी ।।८।।

पढ़ैं सुष्ट अष्टक अरिष्टक निवारन।
सुनैं नष्ट संकष्ट संपत्ति कारन ।।
करै बुद्धि परकास तम ताप हारन।
किशोरी किशोराब्ज पद चित्त धारन ।।९।।

।। दोहा ।।

प्रति श्लोक भाषा लिषौं, हरि गुरु कौं हिय धारि।
भूल चूक जो होइ कछु, आपहि लेहु सुधारि ।।१।।

।। चौपाई ।।

वंदौं सच्चित आनंद रूप । कृष्ण क्लेश कर्षक सुख रूप ।।
जो वेदांत वेद्य गुरु सोई । बुद्धिहि साक्षी नानक वोई ।।१।।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु कहायौ । गुरु ही देव महेश्वर गायौ ।।
परब्रह्म गुरु ही को जानौं । नमस्कार श्रीगुरु को ठानौं ।।२।।

महा तिमिर अज्ञान अपारा । अंध नयन जिह हरि न निहारा ।।
ज्ञानांजन देखो ले नयना । नमो नमः तिन गुरु सुख अयना ।।३।।

जो अखण्ड मंडल आकारा। व्यापि रह्यौ चर अचर अपारा ॥
तत्पदार्थ हरि जिन परसायौ। तिन गुरु नमस्कार मन भायौ ॥४॥

सुई आचार्य स्वरूप सुहावैं। सिष्यहि परम सुतत्व मिलावैं ॥
करै जीर्ण अघ सक्तिहि वारण। दीक्षहिं नाशै तम भव कारण ॥५॥

जो जो मम शरणागत होई। बुद्धियोग देवौं तिह सोई ॥
यह सुप्रतिज्ञा हिय मैं धारि। गुरु स्वरूप धारैं अवतारि ॥६॥

सोई गुरु नानक अवतरे। द्वितिय रूप गुरु अंगद धरे ॥
सोई अमरदास प्रभु भए। रामदास गुरु जग जस छए ॥७॥

सोई गुरु अर्ज्जुन हो आए। हरिगोविंद बहुरि प्रगटाए ॥
गुरु हरिराय भए सुखकारी। गुरु हरिकृष्न पाप दुःख हारी ॥८॥

त्याग बहुत आदर जिन कीना। त्यागबहादुर नाम प्रवीना ॥
गुरु गोविंदसिंध पुनि होई। रक्षक धर्म भए प्रति सोई ॥९॥

प्रभु नानिक निज पुत्र रूप धरि। श्री श्रीचंद नाम अद्भुत करि ॥
योग निवृत्तिहि विधि अनुसरी। विष्णु भक्ति पुनि जग विस्तरी ॥१०॥

लक्ष्मीचंद्र रूप जग पावन। रक्षक धर्म प्रवृत्ति सुहावन ॥
वंश प्रशंश्य भूमि मैं राखा। जब उद्धार बढ़ाई शाखा ॥११॥

सुई हरि आप भए द्विज राजा। सावित्री उपदेशन काजा ॥
नाम भवानिदास सुभकारी। मुहि द्विज कियौ प्रणाम हमारी ॥१२॥

श्री हरिनाथ इष्ट गुरुदेव। तात द्वार जिन करुणा भेव ॥
विष्णु मंत्र उपदेश कियौ जिन। तात रूप गुरु नमो नमः तिन ॥१३॥

रामसिंध सोई हरि सद्गुरु वर। कियौ तत्व उपदेस कृपा करि ॥
विष्णु स्वरूप माहातम सुधाम। कियौ प्रकाशित तिन्हें प्रनाम ॥१४॥

होई सदा सुख गुरु सुग्याता। विद्यानिधि विद्या के दाता ॥
निज माहात्म कह्यौ समझाई। तिनके चरण प्रणाम सदाई ॥१५॥

वेद मारग कौं करण प्रवृत्त। बेदी रूप भए हरिनित्त ॥
जो ईश्वर नानक अवतार। नमो नमः तिन वारम्बार ॥१६॥

कलि में धर्म क्षीन जब देषा। वेद मार्ग को नाश विशेषा।।
वेदी रूप भये भगवान। कलि उद्धार हेतु ईशान।।१७।।

द्वापरांत मैं कृष्न मुरारि। करि अवतार हर्यौ भूभार।।
केतक प्रगट असुर संघारे। क्षत्री असुर कितक हनि डारे।।१८।।

वहुरि असुर नर हो हो आए। याज्ञक अपने रूप बनाए।।
देव द्रोह निज मन मैं धार। करैं यज्ञ चहि बल वदवार।।१९।।

तब भगवान विष्णु करुणा कृत। असुरमोह देवन रक्षण हित।।
वद्ध रूप सव वेद विरुद्ध। रच्यौ सास्त्र पाषंड असुद्ध।।२०।।

तव ते असुर मोह सौं छए। यज्ञ छोड़ि पातालहि गए।।
तव ते चारजु ऋत्विज रहे। तिन पाषंड शास्त्र दृढ़ गहे।।२१।।

महा कुत्तर्की तिन कुतर्क सुनि। भए भ्रष्ट सब लोक वेद पुनि।।
जग उद्धार हेतु सुभ धर्म। भयौ लोप छायौ अपकर्म।।२२।।

जव जव होत धर्म की हान। वढ़त अधर्म लोक मैं जान।।
तव तव आप धरौ अवतार। है भारत यह निश्चय धार।।२३।।

साधुन की रक्षा के कारण। पापी असुर करौ संघारण।।
नित्य धर्म सुस्थापन करौ। युग युग माँहि सदाँ अवतरौ।।२४।।

यह सुप्रतिज्ञा मन मैं धार। सिव संकर निज रूप निहार।।
अज्ञा करी तवै ईशान। शंकर भए अचर्य्य महान।।२५।।

चारि हज़ार चारि सै सर्स। जव वीतै कलियुग की वर्स।।
तव नहिं अग्निहोत्र विधि होई। कहे शास्त्र ने निश्चय सोई।।२६।।

पुनि संन्यास विवर्जित मानैं। पंडित भूल ताहि नहि ठानैं।।
यही स्मृति निज मन मैं धारि। शेष काल संन्यास विचारि।।२७।।

वेद मार्ग रक्षा के कारण। उद्यत हुए संन्यासहि धारण।।
श्री शुक चरणदास विद्वान। गौडपाद वदरी सुस्थान।।२८।।

वालक ही उपनयनहि पाय। तिन श्री गुरु की शरण सिधाय।।
अज्ञा पाय लह्यौ संन्यास। गोविन्दाचारज गुरु पास।।२९।।

करि दिग्विजय बौद्ध सम जीत । वेद मार्ग की थापी रीति ।।
यथा योग्य जैसे अधिकारी । ब्रह्म ज्ञान की विधि निर्द्धारी ।।३०।।

अधिकारी सुनि ज्ञानहि पाइ । निजानंद में रहे समाइ ।।
पुनि दुर्ल्लभ विरला जन कोई । ब्रह्मज्ञान अधिकारी होई ।।३१।।

भक्ति मार्ग कौं करन प्रवृत्त । चाह्यौ हरि अपने जो भृत्य ।।
शेषादिक कौं अज्ञा दीनी । तिन अवनी गति त्यौंही कीनी ।।३२।।

भक्ति मार्ग कौं कियो प्रचार । क्रिया करम पूजा आचार ।।
दुर्ल्लभ ज्ञान अधिकारहि चीन्हा । तत्वबोध को गोपन कीना ।।३३।।

त्रिविधि योग जग मैं प्रगटायौ । नर न श्रेय चाहत मन भायौ ।।
ज्ञान कर्म अरु भक्ति प्रधान । इन विन और उपाय न आन ।।३४।।

इह त्रिकांड जो स्मृतिहि गायौ । सो कल्यान हेतु निश्चायौ ।।
ज्ञानकांड जो गोपन कीयौ । सो यह कृष्ण आस मत थीयौ ।।३५।।

क्रिया युक्त परिचर्य्या जोई । तिहि अधिकारिहु दुल्लभ होई ।।
याते सर्व लोक उद्धार । शक्य नहीं इह कियौ विचार ।।३६।।

वैदिक संप्रदाय नित एक । सदाँ सनातन जहाँ विवेक ।।
ताहि त्याग निज मति अनुसार । निज-निज रची सम्प्रदाचार ।।३७।।

तौहू नहीं दोष कछु जाते । होत प्रर्वृत्ति भक्ति की ताते ।।
पै दुष्कर कलि काल मझार । पूजा क्रिया सहित आचार ।।३८।।

सत युग ध्यान कियें फल जोई । त्रेता यज्ञ यजै पुन सोई ।।
द्वापर परिचर्य्या फल वही । कलि मैं एक कीर्त्तन सही ।।३९।।

राजन कलि यह दोष षजाना । तामैं एक महा गुण माना ।।
विष्णु नाम कौ कीर्त्तन करैं । परम भक्त भव सागर तरैं ।।४०।।

या विधि श्री भागवत मझार । कलि मैं विष्णु कीर्त्तन सार ।।
द्वापर मैं पूजा अधिकार । कियौ निरूपन भली प्रकार ।।४१।।

ताते परिचर्या प्राधान । द्वापर ही के मध्य पछान ।।
है कलि मैं प्रधान इक नाम । सव सिरमौर करै सुव काम ।।४२।।

ब्रह्मा नारद को संवाद। श्रुति ने कियौ तथा अनुवाद ।।
सुई श्रुति पाठ यथावत राख्यौ। ह्यां निर्णय हित सो इम भाष्यौ ।।४३।।

द्वापरांत नारद जी गए। श्री ब्रह्मा पै पूछत भए ।।
भगवन मैं पृथवी मैं अटौं। कैसैं कलिक काल तैं छूटौं ।।४४।।

तव ब्रह्मा जू बोले बानी। साधु पृसन पूछो सुखदानी ।।
सर्व श्रुतिन कौ यह रहस्य है। महागोप्य त्तू अव सुनि चित दै ।।४५।।

कलितारन भगवत सुषचाम। आदि विष्णु नारायण नाम ।।
पुनि बोल्यो नारद सुज्ञान। कौन नाम बोले भगवान ।।४६।।

षोडश नाम प्रभुहि गुण ग्राम। कलि कल्मष कर्षक अभिराम ।।
याते पर उपाय कोऊ नांही। देष्यौ सर्व वेद के मांही ।।४७।।

यह षोडश हरिनाम अतीव। षोडष कला जु आवृत जीव ।।
ताके सभ आवरण विनाशै। परंब्रह्म तव आप प्रकाशै ४८।।

मेघ गए जिमि निकसै भान। आपहि मिटै सकल अज्ञान ।।
नारद कहै कहौ भगवान। याको विधि बोले ईशान ।।४६।।

यामै नहीं और विधि कही। निस दिन जाय यही विधि सही ।।
शुचि असुच्चि नही कोऊ नेम। ब्रह्म जाय यह निज सुष क्षेम ।।५०।।

ब्रह्म सलोक मुक्ति सो पावैं। पुनि सामीपताहि दरसावै ।।
नित्य ब्रह्म सायुज्यहि लहै। जो इह मंत्र प्रेम सौं कहैं ।।५१।।

अैसे वेदहु मैं वहु देषा। यही अर्थ का निर्नय लेषा ।।
तंत्र स्मृति इतिहास पुराण। और संहिता माँहि वखाण ।।५२।।

हरिहि नाम हरि ही को नाम। नाम ही हैं मम जीवन धाम ।।
नहीं आन गति कलि के मांही। कलिहि आन गति नाहीं नाहीं ।।५३।।

कहै स्मृति इह नहि और। नामहि वेद त्रिकांडहि ठौर ।।
नामहि हैं यह तिधा पुकारा। ताते राम नाम तत सारा ।।५४।।

नाम विना कोऊ गति कलि नांही। त्रिया निखेद कह्यौ या माहीं ।।
नाम हीन जो आन उपाय। व्रथा खेद भूले भ्रम पाय ।।५५।।

क्रिया युक्ति जो भक्ति दृढाई । सोऊ नहिं कलि माँहि सुधाई ।।
यह देषत कलि नाम प्रचार । हेतु कितु कियौ नानिक अवतार ।।५६।।

विष्णु रूप नानक भगवान । नहि त्रिकांड हूँ दूषित ठान ।।
नाम कीर्त्तन कौ प्राधान । उपदेस्यौ जग कृपानिधान ।।५७।।

जो नासी फल कर्म विरागी । ज्ञानिहि अधिकारी वडभागी ।।
कर्म माँहि जिनको रुचि भारी । कामी कर्म योगी अधिकारी ।।५८।।

जिनको स्वतः कथा रुचि गाढ़ी । श्रद्धा सत संगति करि वाढ़ी ।।
नहिं विरक्त पुनि नहिं अतिसक्त । सो वैहैं अधिकारी भक्त ।।५९।।

या विधि हरि उपदेश प्रकार । जाकौ होइ जहाँ अधिकार ।।
सो तासौं प्रवृत्ति को ठानो । परिपूरण हित यह विधि मानौ ।।६०।।

करत कर्म कोउ होय प्रमादी । प्रत्युत यज्ञ माँह विस्मादी ।।
सो श्रीकृष्ण नाम कौं गहै । न्यूनहोई पूरण श्रुति कहै ।।६१।।

जाके सिमरन कीर्त्तन कीनैं । यज्ञ दाम तप कर्म नवीनैं ।।
न्यून होई पूरन सम काम । ता अच्युत कौ करौ प्रणाम ।।६२।।

जाके सिमरन कीर्त्तन कीनैं । यज्ञ दाम तप कर्म नवीनैं ।।
न्यूनहोइ पूरण सभ काम । ता अच्युत कौ करौ प्रणाम ।।६३।।

कह्यौ स्मृति ताके अनुसार । हरिकौ नाम जु करै उचार ।।
योगि सिद्ध निज नामहि पावै । यह निर्णय सभ के मन भावै ।।६४।।

सिमिरन नाम कीर्त्तन जोऊ । यद्यपि कहे स्मृति ह्याँ दोऊ ।।
तद्यपि और स्मृति मों भाषा । सुलभ कीर्त्तन ही वर राषा ।।६५।।

विष्णु निरंतर मन आराधे । बड़े यत्न सों सुमिरन साधे ।।
ओष्ट चलावन मैं जप होई । तातें सुलभ श्रेष्टतर सोई ।।६६।।

जिनको हैं अशक्य वेयोग । तिनको प्रतिनिधि नाम वियोग ।।
कह्यौ स्मृति सो निश्चय कीजै । सदा नाम हरि जी को लीजै ।।६७।।

जो पुरुषार्थ चतुष्टय लहे । पुनि तिनके जो साधन कहे ।।
तिनके विना तिन्हैं सो पावैं । जो नर हरि चरणन मन लावैं ।।६८।।

सोई विष्णु नानिक अवतार। कियौ प्रधान नाम निर्द्धार।।
निज संमत वाणी मैं कह्यौ। नहि दूषण काहू कौं दयौ।।६९।।

शक्तहि नहीं त्रिकांड विरोध। श्री भगवत नानक को बोध।।
तिह असक्त जो तिन श्रुति सार। सबको कृष्ण नाम आधार।।७०।।

साक्षात हरि नानक जानौ। यामें कछु संसय मति आनौ।।
श्री भागवत माँहि सो लह्यौ। प्रथम स्कंध सूत मुख कह्यौ।।७१।।

अथ हरि जब युग संध्या आवै। दस्यु पाप क्षत्रिन प्रगटावै।।
विष्णु यशोंकित नामहि गावैं। नाम्ना कल्कि जगतपति भावैं।।७२।।

अथ बुध रूप अनंतर जोई। नानक रूप भए हरि सोई।।
युग को आदि जु काल बखाना। संध्या ताहि कहै विद्वाना।।७३।।

युग को अंत काल है जोई। पुनि संध्यांश कहावै सोई।।
श्री भागवत माह निर्णीत। संशय नहीं करौ परतीति।।७४।।

कलियुग की संध्या मैं गायौ। श्री हरि को अवतार सुहायौ।।
उद्भव को सुस्थान बतायौ। दस्य प्राप क्षत्रिन में भायौ।।७५।।

निज वर्णाश्रम धर्म विहीन। दस्यु प्राप तिन कहैं प्रवीन।।
वै न दुष्ट देही से जैसे। प्रगटे प्रथु महातमा तैसे।।७६।।

कर्म कह्यौ तिह सूत सुजाना। हरि यस नाम्ना कल्कि वषाना।।
विष्णु सुजस अंकित जो नाम। ताकरि कियौ लोक को काम।।७७।।

सुयश विष्णु को नाम खड्ग लै। कियौ कलकि सम कलि दोषन क्षै।।
कलि के दोष समस्त निवारि। सर्व लोक को कियो उधार।।७८।।

इह शंका कोऊ मन मत ल्यावै। यह तौ वाक्य कल्कि यश गावै।।
यह संशय निरवारन हारा। ह्याँ तौ संध्या शब्द उचारा।।७९।।

कलि संध्यांस माहि निर्द्धार। म्लेछ हरन कल्किहि अवतार।।
ताते यह नानिक भगवान। श्री भागवत वाक्य प्रमान।।८०।।

यह युग संध्या में अवतार। कियौ भागवत माँहि उचार।।
ताते यह नानक ही जानौं। नहि कल्की यह निश्चय मानौ।।८१।।

विट्ठल और कृष्ण चैतन्य । वर्णे ईहा कहै जु अनन्य ॥
सो नहि वनैं ब्रह्मकुल मांहीं । तिनहिं जन्म छत्रन मौं नाहीं ॥८२॥

वेऊ होइ हरि के अवतारा । यामैं नहीं विवाद हमारा ॥
ताते हरि नाना तनु धारि । करत सर्व जीवन उद्धार ॥८३॥

जो जो सत्व विभूतिह धारी । श्री ऐश्वर्य तेज बलकारी ॥
सो सो मम तेजोंश पछान । गीता माहिं कह्यौ भगवान ॥८४॥

ताते जिनि कालै उपदेस । असंख्यात जन तरैं कलेश ॥
तिन भगवत स्वरूप के मांही । संतन को विवाद कछु नाही ॥८५॥

जो वे हैं भगवत अवतार । संक करैं तौ दोष अपार ॥
पुन भगवत द्रोही सो होइ । पावै नरक न संसय कोइ ॥८६॥

जो वे नहिं हरि के अवतार । हरि मानैं कछु दोष न धार ॥
निश्चय सब यह ब्रह्म स्वरूप । यह श्रुति को उपदेस अनूप ॥८७॥

वायु अकास अग्नि जल मही । प्राणिभ गण दिशा सब सही ॥
सरति समुद्र सकल हरि रूप । जो कछु है तिहन मैं अनूप ॥८८॥

हरि ईश्वर भगवान रमेश । जीव कला करि कियौ प्रवेश ॥
श्वपच स्वान गो खर हैं जेते । भूमि डंडवत प्रणमैं तेते ॥८९॥

यौं स्मृतिहु समान सैं कह्यौ । सब जग ब्रह्म न संशय रह्यौ ॥
पुनि विशेष हू ते यह जानौं । विष्णु वैष्णव भेद न मानौ ॥९०॥

ताहू मै वैष्णव आचार्य । साक्षात हरि विग्रह आर्य्य ॥
तिनको विष्णु स्वरूपहि जानैं । कहौ दोख कैसे मन आनैं ॥९१॥

श्रुति अविरुद्ध सर्व की वानी । है प्रमाण सब जग कल्यानी ॥
श्रुति विरुद्ध तौ नहीं प्रमाण । बुद्ध वाक्य सम निश्चय जान ॥९२॥

श्री नानक कौं तिन अनुजाई । नहि अवतार कहै प्रगटाई ॥
इह तौ नहि संशय मन आनौं । गुरू ग्रन्थ मैं प्रगट बखानौं ॥९३॥

यद्यपि बुद्ध विष्णु अवतार । श्रुति विरुद्ध तिह वचन न सार ॥
जौ सामान्य जीव हू कहै । श्रुति सम्मत प्रमाण सो अहै ॥९४॥

वेदहि कों प्रमाणता होई। ताहि विरुद्ध असत है सोई ।।
श्रुति अविरुद्ध सत्य सुखदाई। कहा होत निज कहै बडाई ।।९५।।

यह विचारि ते नहि प्रगटावैं। बहुत वृद्ध प्रभु महिमा गावैं ।।
तिन अवतार प्रगट नहि गायो। उदित सूर्य्य कहु छिपत छिपायौ ।।९६।।

चतुर्हत जहाँ उचित प्रयोग। कियौ चतुर होता विनियोग ।।
श्रुति मैं हैं परोक्षता रीति। देवन कौं परोक्ष मैं प्रीति ।।९७।।

चार प्रकार वहुल जो अहै। विपर्यास आगम तिह लहैं ।।
जिम गवैंद्र मैं आगम आयौ। सिंघहि वर्ण विपर्य्य पायौ ।।९८।।

स्मृति विष्णु यशस जो कह्यौ। नाम्ना कल्कि जु सुस्थिति भयौ।।
विष्णु जसहि सम्बन्ध प्रभाव। नानक या कलि प्रगटत भाव ।।९९।।

नाम्ना पद सैं नान निकासा। अट आगम सस्वर होइ भासा ।।
कल्किह प्रथम कवारहि लीजै। तिहि मिलि नानक नाम कहीजै।।१००।।

नाम्ना मैं सैं मापु न रह्यौ। कल्कि कल्किहि सुविपर्य्यय लह्यौ।।
अट आगम करि कलिः वषानौ। नानक मा कलि पद प्रगटानौ ।।१०१।।

क सुख नान कहियत अप्राणा। नानक निरुपाधि सुख माना ।।
नान अविक्रिय क सुख लहियै। नानक सुख जिह अविकृत लहियै।।१०२।।

अथवा ना पद पुरुषहि भाव। अक दुख अनक सु दुःखाभाव ।।
पुरुषावतार दुःख को नाशो। नानक नाम सुई सुखराशी ।।१०३।।

चित स्वरूप जिय हरि भगवान। दशरथ गृह प्रगटे श्रीमान ।।
वेद भए रामायण आइ। वालमीक मुख सों प्रगटाइ ।।१०४।।

पुन जव साक्षात भगवान। कृष्ण भए वसुदेवहि भान ।।
भारत रूप भए सव वेद। अरु भागवत हरे जग खेद ।।१०५।।

त्यौंही श्री नानक अवतारा। गुरु स्वरूप जव जग उद्धारा ।।
वेद वंदि जन को करि रूप। प्रगटे ह्वै कल्लादि स्वरूप ।।१०६।।

जैसैं प्रथु नैं कियो विवरजन। तऊ किए जश वंदिन वर्णन ।।
तैसे प्रभु नानकहि न भायो। तऊ वंदि जन जस प्रगटायौ ।।१०७।।

॥ कल्ल बचनं ॥

गावहि जनकादि जुगति जोगेश्वर हरिरस पूरण सर्वकला ।
गावहि सनकादि साधु सिद्धादिक मुनि जन गावहि अछल छला ॥
गावै गुन ध्रूव अटल मंडल वै भक्ति भाव रस जाणिओ ।
कवि कल्ल सुयश गावौ गुरु नानक राज जोग तिन माणिओ ॥१०८॥

गावैं कपिलादि आदि जोगेश्वर अपरंतर अवतार वरो ।
गावैं जमदग्नि परसु रामेस्वर कर कुठार रघु तेज हरो ॥
उद्धव अक्रूर विदुर गुण गावैं सर्वातम जिनि जानिओ ।
कवि कल्ल सुयश गावो गुरु नानक राज जोग तिन माणिओ ॥१०९॥

गावैं गुण वर्ण चारि षट दर्शन ब्रह्मादिक सिमिरंत गुणा ।
गावैं गुण सेस महेस जिह्वारस आदि अंत लिव लाइ घुना ॥
गावैं गुण महादेव वैरागी जिनि ध्यान निरंतर जागियो ।
कवि कल्ल सुयश गावौ गुरु नानक राज योग जिन माणिओ ॥११०॥

सतयुग तैं माणियो छलियो वलि वामन भायौ ।
त्रेता तैं माणियो राम रघुवंस कहायौ ॥
द्वापर कृष्ण मुरारि कंस किरतारथ कीयौ ।
उग्रसेंन कौं राज अभय भक्तहि जन दीयौ ॥
कलियुग प्रमाण नानक गुरू अंगद अमर कहाइयौ ।
श्री गुरू राज अविचल अटल आदि पुरुष फरमाइयौ ॥१११॥

॥ चौपाई ॥

अैसे निज संप्रदा मझार । है प्रसिद्ध नानक अवतार ॥
अवतारत्त्वहि जनक न कहियैं । जनक जनहि कमुख जिह लहियै॥११२॥

वही ब्रह्म सर्वाधिष्ठान । सर्व विश्व को जनक महान ॥
ताते जनक कहाए हरी । नानक नाम विश्व उद्धरी ॥११३॥

जो मनुष्य जन कहि अवतार । नानक होइ इह्नी निर्द्धार ॥
तौ भट्टन सुस्तुति के मांही । विष्णु अवतार सिद्धि हो नाहीं ॥११४॥

जनकादिक गावैं इह कैसैं । कहे कल्ल इह वने न तैसे ॥
ब्रह्म रुद्र सनकादिक गावैं । विष्णु रूप बिन नहि बनि आवै॥११५॥

इह वर्णित ऐश्वर्य महान। विना विष्णु क्यौं होइ समान ॥
ताते नानक गुरु हरि रूप। संशय करैं परै भव कूप ॥११६॥

वेदी प्रभ नानक भगवान। वेद मार्ग को करण विधान ॥
कालू के ग्रह धरि अवतार। वालपने किए चरित अपार ॥११७॥

शेष नाग फन छाया लेटे। परस दिखाय जगत भय मेटे ॥
राय वुलार म्लेछ को नाथ। सो विशेष लहि भयो सनाथ ॥११८॥

महि खिन चरो खेत को झूरा। अन्न सिमृद्ध व्रद्धि करि पूरा ॥
अैसे और चरित्र अपार। दरसाए तारो संसार ॥११९॥

पाधे के पढ़िवे को जाइ। निजैश्वर्य कुछ ताहि दिखाइ ॥
वेद सार हरि को जस कह्यौ। पाँडे सुनत कृतार्थ भयौ ॥१२०॥

इम नृलोक मैं दुर्घट लीला। करि गृहस्थ आश्रम शुभ शीला ॥
श्रुति पथ धर्म प्रवृत्य दिखाय। जग तारण हित कियो उपाय ॥१२१॥

हरि नानक श्री पुनि तिह जायौ। प्राची दिशि शशि सम प्रगटायौ ॥
प्रथम पुत्र श्रीचंद सुहाये। लक्ष्मीचंद द्वितीय सुत जाये ॥१२२॥

व्राह्मण सुत ल्यावन के काम। हरि अर्ज्जुन जिम श्रीहरि धाम॥
जाइ व्रह्म नारायण रूप। देषो भूमा परम अनूप ॥१२३॥

तुम्ह दुउ मेरे अंश स्वरूप। भूभर हरण भए अनुरूप ॥
सो तुम भूमि भार सभ हरो। पुन मम पास आगमन करो ॥१२४॥

इम नारायण आज्ञा पाइ। द्विज पुत्रन कौं निज सह ल्याइ ॥
भूमो आइ द्विजहि सुत दीन। जिम अज्ञा तैंसैं ही कीन ॥१२५॥

तिमि श्री गुरु नानक भू आइ। करि प्रवृत्त मारग सुखदाइ ॥
हरि आहूत गए वा ठाही। वेई के निर्मल जल माँही ॥१२६॥

नार अपन नारायण रूप। प्रत्यक व्रह्म अभिन्न स्वरूप ॥
तीनि दिवस जल शाइर रहे। वहुरि लोक मैं आवत भए ॥१२७॥

ईस निदेश हृदय में धारि। पथ नृवृत्त कौं चहत प्रचार ॥
नारायण ही गुर ठहराए। जपजी जपत वहिर प्रगटाए ॥१२८॥

जैसे कृष्ण विष्णु नहि भेद । तिम हरि नानक नहि विच्छेद ।।
दुऊ सच्चित स्वरूप ही भासैं । भेद मतिन कौं संशय नाशैं ।।१२६।।

जिम लीला करि तहाँ वखानो । तुम दुऊ अंस कृष्ण सो मानो ।।
तिम गुरु नारायण को जानो । श्री नानक कों शिष्य वखानौ ।।१३०।।

वेद मार्ग को करन प्रचार । वेदी गुरु नानक अवतार ।।
श्रुति संमत नृवृत्त सतपथ जो । निश्चित वुद्धि विचार कियो सो।।१३१।।

चारि सहस सत चार वर्ष जव । कलि वीतैं नहिं अग्निहोत्र तव ।।
पुनि संन्यास ग्रहण नहि करैं । शास्त्र देषि जो निश्चय धरैं ।।१३२।।

अश्वमेध पुन गोहा लंभन । पुन संन्यास पिंड वल पित्रन ।।
पुन देवर सैं सुत उपजावन । पंच विवर्जित कलि नहि पावन।।१३३।।

इत्यादिक वहु स्मृति वषाना । कलि संन्यास विवर्ज्जित माना ।।
पुन श्रुति कहैं विन सभ त्यागैं । हरि मारग मैं क्यौं अनुरागै ।।१३४।।

नहीं कर्म नहीं प्रजा वढ़ाए । नहि अपार संपति के पाए ।।
केवल त्याग कियै गति पावैं । अैसैं श्रुति वहु बचन सुनावै ।।१३५।।

ज्ञान विना नहि मुक्ति वनाई । साधन ताहि त्यागि अधिकाई ।।
यह निर्नीत रीति चलि आई । ता विन ताहि न पावै भाई ।।१३६।।

फिरि फिरि यह विचार मन माहीं। विन संन्यास परम गति नाहीं ।।
आश्रम रूप संन्यास जो चीन्हो । कलि निखेद लखि सो नहि कीन्हो।।१३७।।

जो संन्यास विवि दिषा गायौ । जन्मद कर्म त्याग तहाँ पायौ ।।
सो संन्यास निराश्रम देषा । श्रुति संमत निरदूषित पेषा ।।१३८।।

यह संन्यास सर्व अधिकारी । मैत्रेयादि माँह संचारी ।।
श्री भगवद्गीता मैं कह्यौ । सुई संमत हरि हू कौ लह्यौ ।।१३९।।

सर्व कर्म फल त्यागन करै । जन्न निमित्त कर्म परिहरै ।।
यही त्याग हरि के मन मानो । जग उद्धारक सो पहचानौ ।।१४०।।

नाम निरंतर जप उपदेशा । कियो विवि दिशा न्यास निवेशा।।
वेद मार्ग सव करि स्वीकार । कियो न दूषण कतहु उचार ।।१४१।।

उदासीन वत जो आसीन। श्री भगवत् गीता कहि दीन ॥
ताते उदासीन मत कीनो। सर्व अदूषक हरि रस भीनो ॥१४२॥

पुन सास्त्रोक्त स्वधर्म परायण। श्रुति रहस्य जिनके नित गाइन॥
शब्द ब्रह्म मैं नित निस्नाता। पर ब्रह्म पूरण विज्ञाता ॥१४३॥

इम सन्मार्ग निर्मले कीन्हे। कलि मल हरन सर्व जग चीन्हे॥
म्लेछ विनासन धर्म सहाई। किए सिंह सव जग सुखदाई ॥१४४॥

महा म्लेछ भूमी मौं वाढ़े। देव द्रोह धर्म द्रिढ गाढे ॥
तिनै देषि गोविंद सिंघ वर। धरो रूप सव म्लेछ नाश कर ॥१४५॥

पंथ प्रवृत कीयो वलशाला। म्लेछ नाश कों काल कराला ॥
गऊ ब्राह्मणहि रच्छक भारी। नाम कीर्त्तन दृढ़ व्रतधारी ॥१४६॥

महा म्लेछ दुष्टन संघार। मुष्य धर्म तिन कियो उचार ॥
देव यजन पुन कियौ प्रचार। धर्म सकाम लोक हितकार ॥१४७॥

श्री गोविंदसिह हरि कला। दुर्गा पूजि दुष्ट दलदला ॥
श्री गोविंदसिह वपु धार। नहि करते जो सिंह अकार ॥१४८॥

म्लेछोपद्रव ते अपहार। हो जातो श्रुति धर्माचार ॥
वौद्ध नाश हित शंकर जैसें। गोविंदसिंघ म्लेछ हरि तैसें ॥१४९॥

श्री मद्गोविंद सिंघ स्वरूप। म्लेछ नास के हेत अनूप ॥
वेद मार्ग रक्षा के कारण। सिंघ वेश वर कीनो धारण ॥१५०॥

श्रीमन्नानक मत अकलंका। तामैं करै मूढ़ कोऊ शंका ॥
ह्यां वर्णाश्रम को आचार। विद्यमान नहि किसी प्रकार ॥१५१॥

तौ वह पुरुष उलूक समाना। तिह प्रत्यक्ष सूर्य्य नहि जाना ॥
दिन दोपहर भान नहि सूझै। तैसैं अज्ञ यचन विन वूझै ॥१५२॥

श्री नानक गुरु परम प्रवीना। धर्माचार निखेद न कीना ॥
वाणी मैं कहुँ कियो न वर्जन। क्यौ शंका आने मन दुर्जन ॥१५३॥

वानप्रस्थ और संन्यास। किए शास्त्र कलि माँह निरास ॥
ब्रह्मचर्य अधिकारी करैं। यथा सक्ति विधिवत अनुसरै ॥१५४॥

पुन गृहस्थ आश्रम जो होई। सर्व वर्ण मैं परगट सोई ॥
कुऊ रागवश जो परिहरैं। उचित धर्म विधिवत नहि करैं ॥१५५॥

अथवा भय प्रमाद वस भयौ। बुद्धि हीन कछु औरै ठयौ ॥
सो तिह दोष न पंथहि अहै। पंथहि दोष वृथा षल कहै ॥१५६॥

जो अधर्म को घर्म वतावैं। सोई पंथ उपदेस सिषावैं ॥
उपालंव तौं गुरु कौ आवैं। पुनि दूषित हू पंथ कहावैं ॥१५७॥

निज स्वधर्म अरु विष्णु भक्तिवर। गुरु सेवा हरि रूप भाव धर ॥
करैं यथा व्रत संसय नाहीं। जो द्विजाति नग्नक मत मांही ॥१५८॥

जो कोऊ इह कहै कुतर्की। संध्या कौंन तुम्हारे घर की ॥
तौ वे मूढ़ सास्त्र नहि जानैं। वेदिन मत ते नहि पहचानै ॥१५९॥

जो श्रुति मैं द्विजाति कों कही। सुई एक संध्या है सही ॥
वेद मार्ग को जो अनुसरै। सो नहि और कल्पना करै ॥१६०॥

द्विज ही कौं संध्या अधिकार। शूद्र वर्ण को नहि संचार ॥
सो श्रीमत नानक मत मांही। अधिकारी कों वर्जहि नांही ॥१६१॥

जिन वैदिक संध्यादिक त्याग। निजाचार को रच्यो विभाग ॥
पुन आचारज आप कहाए। कलि प्रभाव पाषंड बढ़ाए ॥१६२॥

वेद वाह्य जिन काढ़ी रीति। ह्वै आचार्य चले विपरीत ॥
छन्न नास्तिक सो पहचाने। दंभ कपट कलि मोह कसाने ॥१६३॥

द्विज न होइ नहि तिर अधिकार। संध्यादिक श्रुति धर्म प्रचार ॥
नाम कीर्त्तन के अधिकारी। सव वर्णाश्रम श्रुति उच्चारी ॥१६४॥

तावत कर्म करै इह जीव। जव लौं नहि वैराग अतीव ॥
मेरी कथा माहि रुचि गाढ़ी। दृढ़ श्रद्धा जो लौं नहि वाढ़ी ॥१६५॥

सुर ऋषि भूत आप्त नर पितरन। नहि यह ऋणी न किंकर राजन ॥
जो सभ विधि शरन्य हरि भृत्य। भयौ मुकंद शरण तजि कृत्य ॥१६६॥

तजि स्वधर्म चरणांवुज भजैं। भक्ति अपक्व कवहु तनु तजैं ॥
ताहि भयौ कछु कहूँ अनर्थ। भजन बिना धर्महि को अर्थ ॥१६७॥

योगहि जिज्ञासिहु जो होई । शब्द ब्रह्म अति वर्त्तै सोई ।।
कहै त्रगुण श्रुति तात्पर्य्यार्थ । तिह अगुणहि सो हो तू पर्थ ।।१६८।।

जो विरक्त अथवा अनुरागी । ज्ञान योग अधिकृत वड़भागी ।।
तिन्है न कर्म माँह अधिकार । शास्त्र उक्त कीनौ निर्द्धार ।।१६९।।

जो द्विजाति विन भए विरक्त । भक्ति ज्ञान पथ मैं अनुरक्त ।।
तिन्है कर्म अधिकार अभाव । लषि वरन्यो केवल हरि भाव ।।१७०।।

नाम कीर्तन ब्रह्म विचार । दरसायो गुरु करणाधार ।।
समय समय हरि के गुण गान । पैरी पय गुरु वंदन ध्यान ।।१७१।।

मेरी भक्ति विमुख जो कोई । शास्त्र गर्त्त मैं डूबै सोई ।।
सो नहि ज्ञान मुक्ति कौं पावैं । शत जन्महु जो यत्न वढ़ावै ।।१७२।।

पूर्व भूमि कृत जो उपासना । द्वितिय भूमि तिह वढ़ै वासना ।।
इत्यादिक वचनन निर्णीत । भक्तिहीन कों मुक्ति न मीत ।।१७३।।

भगवद्भक्ति महात्म अनूप । वढ़ै भूमिका तिह अनुरूप ।।
तातैं हरि गुरु भक्ति वढ़ावन । समैं समैं हरि के गुण गावन ।।१७४।।

वर्णे गुरु नानक अवतार । सर्व लोक को चहि उद्धार ।।
वर्णाश्रम कों उत्तम धर्मन । अधिकारिन कौं किये न वर्जन ।।१७५।।

ज्ञान निष्ठ वा होइ विरक्त । निर अपेक्ष जो मेरो भक्त ।।
सो वर्णाश्रम चिह्न विसार । विधि वर्जित विचरै संसार ।।१७६।।

इत्यादिक ये वचन प्रमान । जो विरक्त वा भक्त प्रधान ।।
ते न दोष भागी गत वाधा । ज्ञान निष्ठ जिन ज्ञानहि साधा ।।१७७।।

परमहंस जो भए उदासी । कर्म वंध तजि कृष्ण उपासी ।।
तिनकों दोष कहौ क्यौं लागे । दर्श देषि सभ पातक भागै ।।१७८।।

कृष्ण तत्त्व मैं जिन मति लागी । निजानंद अनुभव रस पागी ।।
तिनकी कृपा दृष्टि जिह आवै । कल्मष त्याग मुक्ति सो पावै ।।१७९।।

देव यजन सर्व तीर्थ स्थान । यज्ञ अनंत भूमि सव दान ।।
कुल उद्धारक पूज्य वंद्य सो । ब्रह्म मांहि क्षण लग्न चित्त जो।।१८०।।

अहो स्वपचइ सो वडभागी । जिह रसना तुम गुण रसपागी ।।
श्रुति तप होम किए सुस्नान । सुई आर्य जिह नाम प्रधान ।।१८१।।

महापातिकी पाप कमावैं । निमिष एक अच्युत कौं ध्यावैं ।।
सो ततकाल तपस्वी होवैं । तीर्थन हू के पातक धोवैं ।।१८२।।

सो कुल धन्य धन्य सो माता । धन्य भूमि साधू जहां जाता ।।
ब्रह्म जु सुख सागर सच्चित घन। धन्य धन्य जिह भयो लीन मन।।१८३।।

कुल पवित्र जननी सो धन्य । भूमि पवित्र साधु जिह जन्य ।।
स्वर्ग मांहि तिह पितर सुहाए । जिन कुल वैष्णव नाम धराए ।।१८४।।

इत्यादिक ए वचन प्रमान । ज्ञान भक्ति योगी विद्वान ।।
तिन्है न कर्म त्याग को दोष । वहु विधि कियो शास्त्र ने घोष ।।१८५।।

जो कोऊ सन्यासी इम कहैं । नानक मत प्रमान नहि लहै ।।
तिन्है शास्त्र को अनुभव नाहीं । यह निश्चय जानौं मन माहीं ।।१८६।।

तिनही को मत जो सन्यास । कलि निषिद्ध सो है आभास ।।
प्रभु शंकर जो कियो प्रयुक्त । काल शेष तव नहीं अयुक्त ।।१८७।।

अव सन्यास काल नहि रह्यौ । तातें श्री नानक नहि चह्यौ ।।
जन्मापादक कर्म न न्यास । कियो विवि दिषा यह सुषरास।।१८८।।

वेद पुराण सास्त्र को संमत । समझि विचार कियो सुन्दर मत।।
सब श्रेयस कर मार्ग पुनीत । सभ अधिकारिक जाते मीत ।।१८९।।

उदासीन वत जो आसीन । यह भगवत् गीता कहि दीन ।।
तिह अनुसार उदासी कह्यौ । नहि अश्रौत पंथ गुरु गह्यौ ।।१९०।।

नहीं पूर्व काहू नैं करो । इह शंका कोऊ मत मन धरो ।।
ध्रुव सुत उत्कलादि वहु भए । ह्वै अवधूत कृष्ण मग गए ।।१९१।।

वहुतक त्याग शील व्रतधारी । नहि सन्यास धर्म अधिकारी ।।
तिन अनुचरित शास्त्र निर्णीत । जग तारक इह मार्ग पुनीत ।।१९२।।

श्री नानक ने आप वनायो । मत नवीन नहि श्रुति मैं पायो ।।

यह शंका कोऊ मत मन आनो । नित्य सिद्ध इह श्रुति पथ जानो।।१९३।।

हरि गुरु रूप भयो अवतार। कियो लोक उद्धार प्रचार ॥
जिम सन्यास लुप्त श्री शंकर। कलि मैं प्रगट कियौ करुणाकर॥१६४॥

काल शेष लषि जो संन्यास। वेद सनातन मत सुखरास॥
प्रगट कियो शंकर भगवान। शंकर मत तिह कहै अजान॥१६५॥

तैसें श्रुति वर्णित परहंस। न्यास तहां इह कह्यौ प्रसंस॥
नाम विवि दिषा मांह विभाग। जन्मापादप कर्म न त्याग॥१६६॥

सदा सनातन मत श्रुति गीत। उदासीन अवधूतन रीति॥
गुरू नानक कलि मैं प्रगटायो। नानक पंथ सोई कहलायो॥१६७॥

वानप्रस्थ सन्यास ए दोऊ। कलि प्रत्यक्ष निषेधे सोऊ॥
समझि अदूसित मत प्रभु कीनों। कलि उद्धार करण मन दीनो॥१६८॥

कोऊ मठ यह शंका ठानैं। श्री नानक के गुरु नहि जानै॥
गुरु विन कहे वोध क्यों पावैं। कैसे मत अनादि प्रगटावै॥१६६॥

तौ यह व्यर्थ अनूचित शंका। सूर्य माहंतम कौन कलंका॥
वामदेव आदिक जो सिद्ध। पूर्वजन्म उपदेस प्रसिद्ध॥२००॥

सुने गर्भगत ते विग्याता। औरहु जीव बहुत विख्याता॥
श्री नानक हरि पूरण कला। जग उद्धारि संक दलदला॥२०१॥

गुरु ही सौं होवै विज्ञान। यह श्रुतिमार्ग प्रवृत्त न ठान॥
प्रभु सर्वग्य तऊ गुरु कीना। श्री नारायण जल आसीना॥२०२॥

पहिला महल शब्द श्रीराग। श्रीगुरु निज मुख कह्यौ सराग॥
हरि विन जीव जलन पद राषा। मैं अपना गुरु पूछा भाषा॥२०३॥

जो गुरु श्रीहरि होवैं नांहीं। किम इह उक्त वनै पद मांही॥
उपदेश्यो श्रीमन्नारायण। गुरु नानक जग के पारायण॥२०४॥

सुई इष्ट गुरु अपना माना। नारायण नानक निरवाणा॥
तातैं हरि अभिन्न गुरु थपा। सोई जाप निरंतर जपा॥२०५॥

ह्वै अजान इम भाषै जोई। तव मत नहि गायत्री कोई॥
मन्त्र उपदेस नही कोऊ दरसै। कैसे हरि पदवी को परसै॥२०६॥

मिथ्या वचन कहै सो मूढ । समझो नहि रहस्य श्रुति गूढ ॥
गायत्री सब वेदन माता । नहि काहू कल्पित विख्याता ॥२०७॥

सम्प्रदाय के भए विभेद । गायत्री में नहि विच्छेद ॥
किनहूँ जु निज संप्रदा वढाई । गाइत्री हू नई वनाई ॥२०८॥

निश्चय वे पाखंड़ी छए । वेदमार्ग के भेदक भए ॥
वैदिक कौं वैदिक के मांहि । उचित सुकीय कल्पना नाहि ॥२०९॥

गायत्री श्रुति माप कहाई । श्रुति उपदिष्ट द्विजन सौंपाई ॥
सुई नानक मत में द्विज जेते । जपत वेद गायत्री तेते ॥२१०॥

यथा सास्त्र उपनयनहि पाइ । द्विजवर तें विधिवत सिर नाइ॥
प्रति संध्या गायत्री जाप । जो गुरु शिष्य जपै द्विज आप ॥२११॥

जिन्है नहीं तिहि जप अधिकार । सो नहि करैं इही निर्द्धार ॥
हठ प्रमाद वामौढच प्रकार । जो नहि करें दुराग्रह धार ॥२१२॥

पापी जो स्वधर्म कौं त्यागैं । तिनै दोष निश्चय करि लागैं ॥
मूढ़ जनन कृत अनुचित कार्य । नहि दूषित होवै मत आर्य ॥२१३॥

राम नाम यह मंत्र महा वर । श्री नानक उपदेस पापहर ॥
ध्यान सर्व पूरण भगवान । कलिकलेश खंडन विज्ञान ॥२१४॥

॥ श्लोक ॥

मंत्रं तु राम नामं ध्यानं सर्वत्र पूर्णः ।
खंडनं कलिकलेशः नानक हरि सुमिरत नहि दूरण ॥

माला मंत्र और पुन कह्यौ । जप जिह जाप पाप दुख गयौ ॥
भगवद्गुण को गान प्रकार । वाणी और करी विस्तार ॥२१५॥

वेद पाठ मैं नहि अधिकार । विन द्विजात इह कियो विचार॥
सर्वलोक उपकारक भाषा । सिमरन भजन कीर्त्तन राषा ॥२१६॥

मंद बुद्धि वहु जन अधिकारी । दुर्लभ शास्त्र वोध सुविचारी ॥
तिनहू को उपकारक भयो । वेद अर्थ भाषा में कह्यो ॥२१७॥

विविध देस भाषा करि वुद्ध । करै सिप्य को सो गुरु सुद्ध ॥
शास्त्र वचन यह करि अनुसार । भाषा सौं [illegible] संसार ॥२१८॥

हो पवित्र अथवा अपवित्र । सर्वं अवस्थागत किन मित्र ।।
पुंडरीक लोचन सिमिरे जो । अन्तर बाहर सदा सुद्ध जो ।।२३२।।

प्राण तजत हरि नाम पुकारा । सुत उपचार अजामिल तारा ।।
श्रद्धा सौं जो हरि रट लावैं । तिह तारत क्यौ विलम्ब लगावैं।।२३३।।

कुऊ म्लेछ सूकर नैं मारा । मरतहि रामहि राम पुकारा ।।
चढ़ि विमान वैकुंठहि गयौ । ततक्षण रूप चतुर्भुज भयौ ।।२३४।।

दक्षण देस विदित इह बात । सब लोकन मैं है विख्यात ।।
तातैं नाम महात्म अपार । भाषाहू मैं नहीं विकार ।।२३५।।

कान्ह कन्हैया कन्हआ कान्हर । कृष्ण नाम भृ शहु पातक हर ।।
नित्य शुद्ध जो हरि को नाम । भाषाहू मैं पूरण काम ।।२३६।।

गुरु की भक्ति वढ़ावन हारा । वाह गुरु यह मंत्र उचारा ।।
वाह सब्द दुहु अव्यय जानौं । अद्‌भुत स्फुट वोधक पहचानौ ।।२३७।।

गुरु महात्म अद्‌भुत स्फुट होई । यामै नहि संसय है कोई ।।
सिध्या भव समुद्र मैं परचौ । डूवत जीव लोक उद्धरचौ ।।२३८।।

ईश्वर विभु सव हेतु सर्वगत । स्वप्रकाश व्यापकहू न भवत ।।
सभ को हैं स्वात्म सुख रूप । तऊ न भासे महिम अनूप ।।२३९।।

जिनि गुरु करुणा तें दरसायो । महा वाक्य को अर्थ सुहायो ।।
जातें हरि. निज रूप पिछानो । साक्षात कहु नहि विलगानो ।।२४०।।

स्वप्रकास प्रत्यंक चिद्धान । आतमहि गुरु विन भो हन हान ।।
यदपि मृषा तिहि अवृत सोई । नहि है नहि भासै इम होई ।।२४१।।

जिनके वाक्य सुनत ही कांन । जग कारण तम मोह महान ।।
वहां गयौ सो कछु न लषाई । जीव भाव हू गयौ नसाई ।।२४२।।

गुरुर्गुरुतम धाम वषाना । विष्णु सहस्र नाम मैं जाना ।।
वाह गुरु की महम अपारा । अद्‌भुत स्फुट कीनो निरद्धारा ।।२४३।।

श्री गुरु को इह मंत्रराज हैं । सव उद्धारक जग जहाज हैं ।।
जाके उच्चारण के कीने । भव वंधन ते होत विहीने ।।२४४।।

आत्मा रे हरि है दृष्टव्य । श्रवण मनन आदिक कर्तव्य ॥
यह श्रुति आत्म दरस उद्देश । करै नियम विधि जो उपदेश ॥२१६॥

सो वैदांतहि श्रवण दृढ़ावै । पक्ष प्राप्त भाषादि हटावै ॥
यह जु कहैं सो अनुचित जानौ । भाषा व्यावर्त्तक नहि मानौ ॥२२०॥

जो गुरु शिष्य वोध अनुसरे । उपनिषदार्थ व्याख्या करे ॥
भाषा मांहि अर्थ सभ भाषें । कौन भांति ह्यां दूषण आषें ॥२२१॥

जौ न लोक भाषा मैं कहै । क्यों निज शास्त्र वोध निर्वहै ॥
पहलै जो भाषा न सुनावै । व्याकरणार्थ कहौ क्यों पावै ॥२२२॥

जो श्रुत्यर्थ और की वानी । वर्जित होइ यही मन मानी ॥
तौ फिर सूत्र भाष्य सब व्यर्थ । वेद अर्थ को कथन अनर्थ ॥२२३॥

तथा पुराण सहित इतिहास । स्मृत्यादिक संहिता विलास ॥
तन्त्र मन्त्र वन रुदन समान । व्यासादिक श्रम व्यर्थ पछान ॥२२४॥

जे वेदार्थ वोध के काजा । सार्थक है सव उक्त समाजा ॥
तौ तिह सुगम वोध के कारण । शुभ भाषा हू को उच्चारण ॥२२५॥

सूत्र भाष्य अरु सकल पुरान । जिम वेदार्थ प्रवोधक ज्ञान ॥
तिम भाषा प्रवंध है जेते । वोधक क्यों निवारिये तेते ॥२२६॥

भिन्न आतम वोधक जो शास्त्र । बेद अर्थ ते विमुख कुपात्र ॥
भ्रान्तिहि तिन्हैं पक्षता भान । ताहि निवारक नियम पछान ॥२२७॥

वेद तन्त्र के मंत्र जु अहैं । नहि अधिकार सर्व को लहैं ॥
ताते सभ ही के उपकारी । नाम मंत्र भाषा सुखकारी ॥२२८॥

यह मनि कहौ जु भाषा मांहि । नाम मंत्र देवै फल नांहि ॥
यह निःकंटक पंथ सुहायौ । जहाँ भजन हरि को मन भायौ ॥२२९॥

सांकेत परिहासहि कह्यौ । स्तोभ हेलनाहू करि लह्यौ ॥
हरि वैकुंठ नाम सुख सार । करै अशेष पाप संघार ॥२३०॥

चक्रायुध के नाम कहीजै । नित सर्वत्र कीर्त्तन कीजै ॥
प्रभु तत्पहि न अशुचिता आवै । ताते सो सभ दोष नसावै ॥२३१॥

कहै जु कोऊ नानक मत मांहीं। शास्त्र प्रसिद्ध देषियत नांही ।।
तौ वाको यह दोष वषान। वेद भिन्न नहि सास्त्र प्रमाण ।।२४५।।

वेद विरुद्ध शास्त्र जो होई। सो पाषंड न संसय कोई ।।
जिन कल्पित वे शास्त्र बनाए। निश्चय पाषंडी कहलाए ।।२४६।।

वेदी नामक हरि अवतार। भिन्न सास्त्र क्यौ करै प्रचार ।।
वेद यथावत सास्त्र कहावै। जो हित शासक सोक मिटावै ।।२४७।।

श्रुति उपदिष्ट सास्त्र है सोई। वेदिन को यह निश्चय होई ।।
ताको कहन सुबोध प्रकार। भाषा विना नहीं निर्द्धार ।।२४८।।

कहैं जुअर्थ संस्कृत मांही। बिन भाषा कोउ समझै नाहीं ।।
समझै लोक सुई शुभ साजा। और वृथा गौरव किह काजा ।।२४९।।

ताते वेद अर्थ निशिचित जो। भाषा मांहि कहैं गुरुवर सो ।।
सुगम जनन कों वोध बढ़ावैं। सो यह लाघव रीति कहावै ।।२५०।।

जौ कहु भाषा नहीं प्रमान। वचन संस्कृत ही प्राधान ।।
तौ पाषंड सास्त्र हैं जेते। देषि संस्कृत मानौ तेते ।।२५१।।

तातें वेदा सास्त्र को हियौ। समझि ताहि भाषा मैं कियौ ।।
हरि पूरण गुरु करि अवतार। गुरु ग्रन्थ तारक संसार ।।२५२।।

लौकिक वेष वस्त्र के मांही। जो विकल्प सो व्यर्थ लषाही ।।
देह यात्रा अर्थ विचार। वस्त्रादिक सभ रुचि अनुसार ।।२५३।।

सव ही नानक मत जो मिले। सिंघ उदासी पुनि निर्मले ।।
त्यौ संन्यासी वैष्णव जोई। संप्रदाय अनुसारी कोई ।।२५४।।

आचारज जो अग्रह धरते। वेश वस्त्र कोई विधि करते ।।
तौ तिनके जो हैं अनुसारी। विधि तजि क्यौ होते व्यभिचारी।।२५५।।

अरु जु अन्य वैष्णव उच्चारैं। नानक मत शंखादि न धारैं ।।
सालिग्रामादिक नहि जजैं। तुलसी मालादिक नहि भजैं ।।२५६।।

सो इह व्रथा वाद फैलायो। गुरु मत में निषेद नहि पायौ ।।
साक्षात श्री मुख सौं कह्यौ। नानक गुरू ग्रन्थ में लह्यौ। २५७।।

॥ छंद ॥

शालिग्राम विप्र पूजि मनाऔ सुकृत तुलसी माला ॥
राम नाम जप वेडा बांधौ दया करौब दयाला ॥
काहे कलहा सिंचो ये जन्म गवांवहु ॥
का चीठहु गदित्वार का हेग चलावहु ॥

राग वसंत मांह पहचानौं। पहल महल की वाणी जानौ ॥
शालिगराम विप्र की पूजा। विधिवत करौ भाव तजि दूजा ॥२५८॥

धारन करौ तुलसि की माला। राम नाम जप युक्त विशाला ॥
भव समुद्र तारन कौं वेडा। आश्रित कीजै सदही नेडा ॥२५६॥

दया सर्व भूतन पै कीजें। हरि तोषद इह मनहि पतीजै ॥
कौंन काज सिंचन या देह। ऊषर सिंचन वृथा सनेह ॥२६०॥

क्यौ मूरष निज जन्म गवावौ। तनु पोखन हित दुःख बढ़ावौ ॥
काची भीति जु निश्चय गिरैं। तिह गच लेप वृथा अनुसरै ॥२६१॥

या विधि ग्रह उपदेश विचार। अर्च्चनादि कुऊ करैं प्रचार ॥
विन करणे ते मंदहु करना। श्रेयस साधन सास्त्रहि वरना ॥२६२॥

कुऊ मूढ़ जो तत्व न जानैं। दुष्ट बुद्धि इम अर्थ वषानैं ॥
शालग्रामादिक पूजन जौ। वृथा भूमि ऊसर सिंचन सो ॥२६३॥

सख ग्रन्थ को सार निरूपन। राम नाम तिहि पहुचो दूषन ॥
सर्व जीव पै दया जु कही। यह माने सुऊ ऊषर भई ॥२६४॥

पूजन सहतिह दुहुन उचारा। तिह दूषैं सुऊ होत निवारा ॥
ताते ह्यां विधान हरि पूजा। कियौ निखेध देह हित दूजा ॥२६५॥

देश काल सामिग्री सुद्ध। कलि नहि मिलत समुझि कोऊ बुद्ध ॥
वाह्य पूजनादिक को त्याग। आन्तर भक्ति माहि अनुराग ॥२६६॥

कृष्ण गुणानुवाद कौ गान। श्रवण कीर्तन वंदन ध्यान ॥
ताही मैं प्रयत्न नित करैं। हरि अनुराग निरंतर धरैं ॥२६७॥

हरिजन चिन्ह वाह्य जो कहैं। नानक मत वहुधा नहि लहै ॥

सो यह दोष न मन मैं आनौ। शास्त्र दृष्टि कर संशय भानौ ॥२६८॥

द्विविधि प्रकार वैष्णव जानौ। एक वाह्य इक अन्तर मानौ॥
वाह्य शंख चक्रादिक धार। आन्तर वीतराग व्यवहार॥२६९॥

ग्रन्थ सार संग्रह जो कह्यो। श्री वैष्णवन तहाँ यह लह्यौ॥
ताते यह अन्तरमुख रीति। नही वैष्णवता विपरीति॥२७०॥

जो यह भाव अन्तरहि चढ़ो। विष्णु मांहि पुष्कल रस बढ़ौ॥
तौ यह वाहर चिन्ह विधान। भये न वृद्धि गये नहि हान॥२७१॥

और जु कुऊ विन समझैं कहैं। श्री नानक मत मैं नहि लहैं॥
इष्टदेव कौ निर्णय रूप। भजन भावना तिह अनुरूप॥२७२॥

तिनको कथन न सम्यक जानों। गुरु वाणी पढ़ि अर्थ पछानौ॥
जाते षड्विध लिंग विचार। इष्ट विष्णु कीनो निर्द्धार॥२७३॥

उपक्रम उपसंहारहि जानो। अभ्यास अपूर्वता फल मानो॥
अर्थवाद अरु युक्ति अभग। तात्पर्य निर्णय षट लिंग॥२७४॥

गुरु ग्रन्थ के मांहि पछाना। आदि अन्त श्री विष्णु वषाना॥
मध्य विष्णु ही गेय बतायो। वहुत भांति अभ्यास जनायो॥१७५॥

विष्णु नाम विन गति नहि लहई। गर्जि गर्जि इह वाणी कहई॥
यह अपूर्वता रूप दिषाया। तीजा लिंग प्रगट समझाया॥२७६॥

हरि विन मुक्ति भुक्ति नहि पावै। नाम महाफल प्रकट जनावै॥
जित तित विष्णु प्रसंसा कही। अर्थवाद की यह विधि लही॥२७७॥

हरि की भक्ति युक्त सहकारी। गुरू ग्रन्थ मैं विविध प्रकारी॥
इम षडविधि लिंगन निर्द्धारा। विष्णु तत्त्व ही इष्ट विचारा॥२७८॥

गौर तेज विन तेजहि स्याम। करै समर्चन हरि सुखधाम॥
जपै मंत्र वा ध्यावै कोई। अहो शिवे सो पापी होई॥२७९॥

यह संमोहनतंत्र उचारा। नाम सहस गोपाल मझारा॥
श्री राधादि विना हरि सेवा। करी निषेध लहो यह भेवा॥२८०॥

गुरु नानक ग्रन्थन के मांही। राधादिक रति वर्णी नाहीं॥
ताते नहीं उपासन रीति। कहै जु ताहि वचन विप्रीति॥२८१॥

तिह वह तन्त्र वाक्य नहि बूझा । अर्थ यथावत ताहि न सूझा ।।
जो ऐसोई संमत होइ । सोक्ति विरुद्ध कहै क्यों सोइ ।।२८२।।

आप प्रतिज्ञा ऐसी ठानै । क्यों ता विन हरि नाम वषानैं ।।
नारायण उपनिषत मझारा । तापनीयादि मांहि उच्चारा ।।२८३।।

श्रीमद्भागवत विष्णु पुराण । भारतादिहु निरष सु जान ।।
औरहु वहुत ग्रन्थ की वानी । केवल हरि की भक्ति वखानी ।।२८४।।

तातैं सब्द क्रम तैं अर्थ । क्रम हैं अति वलवान समर्थ ।।
यही न्याय मन मो ठहरायौ । तिह अन्वय इह भांति लगायौ ।।२८५।।

श्याम तेज विन जो कोऊ ध्यावैं । गौर तेज अर्चन चित लावैं ।।
विष्णु विमुख सो साकत होई । माहा पातकी कहियै सोई ।।२८६।।

युगुल उपासन प्रेयसकरी । यद्यपि सर्व लोक विस्तरी ।।
भोग मोक्ष की कारण कही । सर्वलोक मैं संमत सही ।।२८७।।

भोग हेतु श्री प्रिया प्रधान । मोक्ष हेतु श्रीपति भगवान ।।
विषय भोग सो जो निर्विन्य । सो वे सेवैं विष्णु अनन्य ।।२८८।।

मनकी वृत्ति निरंतर जोई । ध्येयाकार भक्ति है सोई ।।
सो तौ एक ध्येय के मांही । वने भलैं दो मै तिम नांहीं ।।२८९।।

जो कोऊ जुगल उपासन धरै । सोऊ दूहुन एकता क.रै ।।
नहि तो इष्ट भेदता आवैं । भिन्न उपासन फल नहि पावैं ।।२९०।।

ताते श्री श्रीपति की रानी । विष्णु रूप ते भिन्न न मानी ।।
विष्णु स्वरूप इष्ट निज जाना । एक भक्ति मैं लाघव माना ।।२९१।।

सखी भाव ही कौ प्राधाना । गुरुवाणी में प्रगट वषाना ।।
प्राय: गुरू ग्रन्थ के मांही । सखी भाव विन वोलनि नांही ।।२९२।।

हरि मैं अन्य भाव को वर्द्धन । गुरु नानक सोऊ कियौ न वर्जन ।।
हरि के मधुर सर्व ही भाव । जीवन हू के चित्त सुभाव ।।२९३।।

ज्यौ ज्यौ ताहि उपासैं कोइ । त्यौही होइ कहै श्रुति सोई ।।
विष्णु भक्ति जो विविध प्रकार । तहां प्रमाण यही श्रुति सार ।।२९४।।

जो जैसैं मुहि शरणहि आवैं। तिहि त्यौ भजौं इही मुहि भावै ॥
यह स्मृति ता मांहि प्रमान। वहु प्रकार जो भक्ति विधान ॥२९५॥

जो कोऊ कहै विना हरि प्यारी। सख्य भाव को को अधिकारी ॥
दीन हीन यह जंतु विचारा। क्यौं करि सख्य लहै सुख सारा॥२९६॥

ताकौ अैसौ उत्तर कहिये। निज समर्थ दासहु किमि लहियैं॥
प्रभु करुणा तैं अचिरज नांही। दासी सखी करै छिन मांही ॥२९७॥

प्रभु करुणा को आश्रय कीजैं। ज्यौ ज्यौ रुचि त्यौही मन दीजैं॥
मिले कृष्ण कछु होइ न हान। वहुत श्रुति स्मृत तहां प्रमाण ॥२९८॥

सखी भाव करि जो हरि ध्यावै। हरिप्यारी सपत्निता आवै ॥
कैसैं सिद्धि भावना लहैं। विन श्री प्रिया चरण चित गहै ॥२९९॥

यह शंका जो कोऊ मन आनैं। सो श्री प्रिया महात्म न जानैं ॥
परमेश्वरी स्वरूपा तहां। ईर्षा मत्सर ताहै कहा ॥३००॥

नहीं क्रोध नहि मत्सर ताई। नहि मति अशुभ न लोभ वुराई ॥
पुन्य सील पुरुषोत्तम भक्त। दोष हीन जो हरि अनुरक्त ॥३०१॥

या विधि स्मृति वचन पहिचानो। भक्तन हू मैं दोष न जानौ ॥
तौ तव साक्षात हरि प्यारी। तहां कहां मत्सर दुख भारी ॥३०२॥

विष्णु स्वरूपा हरि अनुसारी। पराभक्ति सो श्री सुखकारी ॥
विष्णु भक्त जो कोऊ कहलावैं। परा प्रीति ही तहां जनावै ॥३०३॥

जो कोऊ हरि अराधना ठानैं। परा भक्ति देवहु सुख मानैं ॥
सवकों सख्य भाव की वृद्धि। विन तिन कृपा न होवै सिद्धि ॥३०४॥

लोकहु में जो मत्सर रीति। निज संभोग हानि भय भीति ॥
पति सामर्थ अल्प पहचाने। अच्युत पति मैं सो क्यौ मानै ॥३०५॥

सर्व दोष वर्ज्जित पहिचान्यौ। सख्य भाव गुरु नानक मान्यौ ॥
ताते गुरू ग्रन्थ के मांही। वहुधा सखी भाव दरसाहीं ॥३०६॥

जो कोऊ इह संका मन आनै। श्री नानक तौ हरि गुरु मानै ॥
कैसैं सखी भावना करै। सुन उत्तर सभ संसय हरै ॥३०७॥

सर्व द्विजाति अग्नि गुरु कहियै । वर्णंन को गुरु ब्राह्मण लहियै ।।
नारिन को गुरु पति ही जानो । सवको गुरु अतिथि पहचानो ।।३०८।।

यह जु स्मृति ने कियो विधान । नारिन पति निश्चित गुरु मान ।।
हरि ही पति गुरु इष्ट पियारा । गुरु हरि स्वातम रूप निर्द्धारा ।।३०९।।

ताते सभ प्रकार पहचानी । गुरु नानक रति हरि मैं मानी ।।
अखिल भाव श्रुति जन्य अनन्या । अनपायनी भक्ति सो धन्या ।।३१०।।

सख्य भाव ते पति हरि कह्यौ । ईश्वर भाव इष्ट सोई लह्यौ ।।
निज उपदेसक लषि गुरु माना । स्वातमा भिन्न स्वरूप वखाना ।।३११।।

जो कोई कहै प्रेम लक्षण जो । परा भक्ति अविधान करै सो ।।
अपरा नवधा भक्ति कहावै । सख्य दास्य आदिक जहां भावै ।।३१२।।

करि अभेद स्वातम त्तव जानै । कैसैं पराभक्ति तहां ठानैं ।।
कैसैं दास्यादिक तहां कीजै । किम अभेद सेवा चित दीजै ।।३१३।।

तिह उत्तर या भांति उचारा । विन विचार यह प्रश्न तुम्हारा ।।
सवकी परा प्रीति जो देषी । आत्माही के मांहि विसेषी ।।३१४।।

जौ अन्यत्र प्रेम कोऊ होई । सो आत्मार्थ न संशय कोई ।।
आतम प्रेम सो नहीं अन्य हित । परम प्रेम सोई वुद्धि न संमत ।।३१५।।

नहि सव काम सर्व है प्यारा । आतम काम सब मै हित धारा ।।
या विधि श्रुति वहु वचन सुनावै। स्वात्महि मैं पर प्रेम वतावै ।।३१६।।

दशमस्कंध भागवत मध्य । वछ: हरण अध्याय प्रसिद्ध ।।
आपुहि कृष्ण भए गोपाला । वत्सादिक सव वस्तु विशाला ।।३१७।।

तव गो गण अरु मात्र न केरी । स्वांगज सुत ते प्रीति घनेरी ।।
हरि तनु सुत मों सुनि विस्माइ । राजा तव पूछो सिर नाइ ।।३१८।।

निज अंगज ते अधिक सनेह । कैसैं विन अंगज में एह ।।
कृष्ण मांहि यह अचरज भेव । तिह उत्तर भाषै शुकदेव ।।३१९।।

राजा सव भूतन मैं देषो । निज आतम मैं प्रीति विशेषो ।।
और पुत्र पित्तादिक मांही । निज संवंधहि प्रीति लषांही ।।३२०।।

ताते हे राजन सब देही। स्व स्वरूप में अधिक सनेही।।
ममता विषय जु सुत धन दारा। तैसो नहि सनेह निर्द्धारा।।३२१।।

देह आतमा ही जिन जाना। तिनहूँ देह परम प्रिय माना।।
जो हैं और देह के संगी। तिनमैं नही सनेह अभंगी।।३२२।।

ममता विषय देह जिन जाना। तिन न प्रेम आतम सम माना।।
जर जर देह तऊ नहि त्यागैं। जीवन की आसा मन जागै।।३२३।।

ताते प्रियतम स्वातम लहौ। सब देहिन कौ निश्चय गहौ।।
आत्म हेतु है सकल पियारा। जो चर अचर सकल संसारा।।३२४।।

यह जो कृष्ण प्रगट पहचानो। सब देहिन को आतमा मानो।।
जग कल्यान हेतु सो भास्यो। माया करि जिमि जीव प्रकास्यो।।३२५।।

वस्तु स्वरूप यहाँ जिनि जाना। जो चर अचर देषियत नाना।।
सौभगवान स्वरूपहि जानो। कृष्ण विना ह्यां और न मानो।।३२६।।

सर्व वस्तु को यथा स्वरूप। कारण मैं सुस्थित है भूप।।
कारण कारण कृष्ण पतीजै। ता विन कहा निरूपन कीजै।।३२७।।

अैसै स्व स्वरूप ही जातें। कृष्ण मांहि वर्णी रति तातें।।
जिह अभेद तिह परम प्रीति है। भेद मांहि लघु प्रीति रीति है।।३२८।।

ज्यो ज्यो आत्म अभेद जनायो। पुत्रादिक मैं हित अधिकायो।।
सन्निहितहि हित अधिक जनाया। तारतम्य ही तहां दिखाया।।३२९।।

अन्य देवता कौं जु उपासैं। निज देवन मैं भेद प्रकासैं।।
सो वह पशू अर्थ नहि जानैं। इम श्रुति भेद निषेध वषानै।।३३०।।

अल्प भेदहूं जो कुऊ करैं। ताते भय यह श्रुति उच्चरैं।।
भय द्वितिय ते निश्चय होइ। इत्यादिक श्रुति भाषै सोइ।।३३१।।

ह्वै अविष्णु नहि कीरतन करैं। नहि अविष्णु पूजन अनुचरैं।।
नहि अविष्णु सिमिरन मन लावै। नही अविष्णु विष्णु कौ पावैं।।३३२।।

इत्यादिक स्मृति हू मैं चीन्हा। भेद उपासन वर्णन कीन्हा।।
विष्णुहि स्वातम अभिन्न उपासे। सख्य भाव वा दास्य हुलासे।।३३३।।

अन्य प्रीति सो छिन छिन छाजैं । आत्म प्रीति बिन छिन नहि जीजै।।
ताते एक्य उपासन मांहीं । प्रीति अनन्य घटे कोऊ नांहीं ।।३३४।।

पुनि सेवाहू अपने मांहीं । परम प्रेम सौं भिन्नहि नाहीं ।।
भोजनादि अपने मो जैसो । दूजे मांहि बनैं क्यों अैसौ ।।३३५।।

जो गुरुदेव इष्ट मैं प्रीति । शास्त्र विहित निज हित लषि भीत।।
पितहि पुत्र हू मैं जो प्रेम । निज निज भोग अर्थ सो नेम ।।३३६।।

ताते प्रीति रीति पुनि सेवा । नित्य अभेद मांहि सुख देवा ।।
भिन्न मांहि जो प्रीति सकाम । दृढ़ नहि रहै दुख को धाम ।।३३७।।

भेद उपासन हूँ जिन माना । निज आचारज को हरि जाना ।।
तिनकी भक्ति श्रेष्ठ पहचानैं । अपनी भक्ति न्यून हीं जानैं ।।३३८।।

जिह अभेद जहां प्रीति सवाई । जहां भेद हित की लघुताई ।।
ताते हरि सेवा अरु प्रेम । बनै अभेद मांहि सुख क्षेम ।।३३९।।

जो अभेद को पक्ष सभारैं । सो स्वरूप सौं एक्य विचारैं ।।
मन बानी ते भक्ति बढ़ावैं । कायहि करि स्वधर्म सुख पावैं ।।३४०।।

भेदवाद जिनके मन नांही । श्रुति संमत अभेद तहां नाहीं ।।
दृढ़ अनुराग न भक्ति तहां हैं । जहां भेद रति मुख्य कहां है ।।३४१।।

पक्ष अभेद मांहि ही सेवा । औपाधिक देहादिहि भेवा ।।
आत्मदेह अभ्यासहि जानैं । स्वाभाविक हू सेवा मानैं ।।३४२।।

भेद मतिन को किसी प्रकार । नहि हरि सेवा को संचार ।।
तिन ईश्वर को विभु पहचाना । जीव रूप अणु भिन्न बषाना ।।३४३।।

विभु ईश्वर अणु जीव विचारा । करै सेव सो कौन प्रकारा ।।
कैसैं कर पुष्पादिक गहैं । विभु शिर चरण कहा सो लहै ।।३४४।।

कहो जु देह द्वार हो सेवा । आण ही जीव होहु विभु देवा ।।
तौ सेवा औपाधिक भई । मुख्य जु तिन मानी सो गई ।।३४५।।

सेवन औपाधिक जु कहायौ । मत अभेद बल ते तिह आयौ ।।
स्वाभाविक निज मत को त्याग । औपाधिक पर मत अनुराग ।।३४६।।

और हु कछू दोष पुनि दरसैं। सेवा कहौ कौन विधि सरसैं॥
तिन मत मैं अध्यास न माना। करि न सकैं संबन्ध वषाना॥३४७॥

अणु आत्मा तनु को समवाय। सो संवंध वनै किह भाय॥
द्रव्य अकार्य अकारण मांही। सो समवाय होत कहु नांहीं॥३४८॥

त्यौहीं अणु निरंश है जोई। क्यों संयोग संभवै सोई॥
है अव्याप्य वृत्ति संयोग। अणु निरंश मैं तिहि न नियोग॥३४९॥

व्याप्य वृत्ति संयोग न देषा। लोक मांहि सो कहू विशेषा॥
जो कल्पना होइ सो देषी। दृष्टि मूल विन सो नहि पेषो॥३५०॥

नैयायक वैशेषक कहै। परमाणवा दिहि सृष्टि जो लहै॥
अप्रमाण सो तिनकी वानी। श्रुति अरु युक्त विरुद्ध वखानी॥३५१॥

सर्व वेद तिह पद आम्नाय। करै वाक्य यह अर्थ सहाय॥
ब्रह्म इतर विषयन के मांही। श्रुति तात्पर्य होत है नांही॥३५२॥

फल वत अर्थ वोध को कारण। वेद यही सबको निर्द्धारण॥
तिह तात्पर्य वनत है नांहीं। निष्फल अर्थ वोध के मांहीं॥३५३॥

जिह तात्पर्य शब्द का मारा। सुई अर्थ ताका पहचाना॥
यही न्याय मन मांही धार। वेद अर्थ अद्वैत विचार॥३५४॥

इही सर्व वेदन को अर्थ। मुहि सुस्थित है शब्द समर्थ॥
माया मात्र भेद अनुवाद। करि निबेध मुहि लहै प्रसाद॥३५५॥

नहों वेद को कहु अनुवाद। अणु संयोग माह संवाद॥
नहि प्रतक्ष कहूं दरसायो। ताते अप्रमाण कहलायो॥३५६॥

अप्रतक्ष जु अर्थ सदाई। तहि अनुमान वनै नहि भाई॥
जहां प्रत्यक्ष साध्य नहि होई। ताहि प्रसिद्ध करै क्यों कोई॥३५७॥

अनुमानहि प्रसिद्ध जो कह्यौ। अनवस्थादि दोष तहां लहौ॥
जहां साध्य सु प्रसिद्धि न पाई। साध्य व्याप्ति नहि हेतु मुहाई॥३५८॥

व्याप्त्याश्रय ही हेतु कहावैं। व्याप्ति विना सो हेतु न भावै॥
निश्चय जहां साध्य को होई। है दृष्टान्त अन्वयी सोई॥३५९॥

साध्य प्रसिद्ध जहां नहि कहियैं । क्यौ दृष्टांत सिद्धता लहियैं ॥
साध्याभाव व्याप्त द्रष्टांत । व्यतिरेकिहू होइ किह भात ॥३६०॥

साध्य ज्ञान विन कैसे होइ । तिह अभाव निश्चय कहु सोइ ॥
साध्य व्याप्त जो हेतू रहैं । पक्षहि पक्ष धर्मता वहै ॥३६१॥

परामर्श तिह ज्ञान कहावैं । साध्य व्याप्ति विन क्यों वनि आवै ॥
अप्रत्यक्ष मांहि निर्द्धारा । नहि अनुमित हो किसी प्रकारा ॥३६२॥

हो अव्याप्य वृत्ति संयोग । नहि निरंश मै ताहि नियोग ॥
अणु को नहि दोहादिक संग । क्यों सोवादिक वनें अभंग ॥३६३॥

श्री नानक गुरु मत मैं कहा । देहाध्यास जहां लौ रहा ॥
औपाधिक सेवा वनि आवै । शंका की कहु गंध न पावैं ॥३६४॥

वोध होइ अध्यास मिटावै । वाधित अनुवृत्तिहि करि ध्यावै ॥
या विधि विष्णु भक्ति तहा होई । जीवन मुक्तिहु भ्रम नहि कोई ॥३६५॥

यद्यपि श्रीहरि वाक्य विचारि । ताहि कार्य नहि शेष निहारि ॥
तऊ भक्ति अननृत्तिह करई । लोक अनुग्रह मन पै धरई ॥३६६॥

लोक अनुग्रह मन मैं धार । करत उचित कर्म व्यवहार ॥
स्मृतिहि देषि नित भक्ति कमावैं । पुनि हरि गुनु महातम मन भावैं ॥३६७॥

आत्माराम जु मुनि वड भागी । हृदय ग्रन्थि विन हरि अनुरागी ॥
करै अहैतुकि भक्ति निमानी । यह हरिगुण महमा पहचानी ॥३६८॥

जव विदेह हो विष्णु अभेद । तऊ न हरि सेवा विछेद ॥
सवही भगवद्धाम निवासी । विष्णु रूप ही है अविनासी ॥३६९॥

जैसे हैं सच्चित आनंद । इनमें नहीं भेद इक विंद ॥
जैसे भगवत अंग अनूप । स्वगत भेद नहि कियो निरूप ॥३७०।

निर्दूषण पूरण गुण चीन । निजवस अचित देह गुण हीन ॥
कग पद मुख सभ आनंद मात्र । स्वगत भेदगत विभु हरि गात्र ॥३७१॥

वैष्णव तंत्र मांहियों कह्यौ । भगवत अंग भेद नहि लह्यौ ॥
कर मुखादि आनंद स्वरूप । त्यौ ही धामादिक सुखरूप ॥३७२॥

जहां सत्य रज तम की हानि । नहि विकार पुन महत प्रधान ॥
जहां न माया किम कोउ और । हरि अनुचर तहां सब सिरमौर॥३७३॥

इत्यादिक वचनन प्रगटाया । हरि के धाम मांह नहि माया ॥
चिदानंद मय इक रस ताई । सभ सामिग्री हरि मय गाई ॥३७४॥

श्री हरि के पार्षद सुख रूप । सषी सखा मृग पक्षि अनुरूप ॥
मणि कंचन की भूमि सुहाई । लता पुष्प द्रुम सव सुखदाई ॥३७५॥

वापी कूप तड़ागादिक जो । और सर्व जो ह्वां सुस्थित सो ॥
विष्णु रूप सभ विष्णुहि जानैं । सच्चिद्वस्तु अभिन्नहि मानैं ॥३७६॥

ताते विष्णु अभेदहु जानौ । सख्य दास्य आदिक सभ मानौ ॥
अव्यतर्क्क हरि लीला जानी । पूरणानंदमयी पहचानी ॥३७७॥

विष्णु धाम विग्रह जो कहा । सत्यानंद मात्र ही लहा ॥
मायक जग मिथा सब जाना । श्री नानक मत यह दृढ़ ज्ञाना ॥३७८॥

ह्यां जो युक्ति औरहू चहीए । पुन प्रमान मन मों अवगहिए ॥
ईशावास्य उपनिषत टीका । तैत्तरीय टीकहु मों टीका ॥३७९॥

त्यौ हीं श्री रामहि जो गीता । तिह टीका पुन परम पुनीता ॥
ताकी व्याख्या मैं विस्तारी । ह्वां विस्तर भय सो न उचारी ॥३८०॥

श्री नानक जपजी के मांही । साक्षात यह कह्यौ तहांही ॥
विष्णु रूप नानक भगवान । मुख अंबुज विकास रस गान ॥३८१॥

सच्चखण्ड वस्से निरंकार । आद्य पुरुष इम कियो उचार ॥
मायाकार विवर्ज्जित कह्यौ । हरि को धाम सत्य ही लह्यौ ॥३८२॥

धामी धाम अभेद जु मानै । आश्रय आश्रित भाव न वानै ॥
यह संका मन मैं नहि राषी । स्वै महिम्न सुस्थित श्रुति भाषी॥३८३॥

प्रभु को धाम सत्य जो कह्यौ । मृषा प्रपंच आप ही रह्यौ ॥
ह्यां अस्पष्ट असत्य दिषाई । वहु प्रकार वाणिहि दरसाई ॥३८४॥

प्रभु धामादि सत्य कहि भाषा । पुनि मिथ्यात्व जगत का राषा ॥
सर्वाचार्य.. विरोधी भया । नानक मत यह निश्चय लह्या ॥३८५॥

सभ वैष्णव मत के आचार्य। कहैं जगत सांचौ हरि कार्य ।।
जग मिथ्यात्व वाद जव कह्यौ। तिन मत तैं विरुद्ध ही भयौ ।।३८६।।

अद्वितीय इक ब्रह्म स्वरूप। ता विन मृषा सकल भ्रम कूप ।।
यह शंकर निर्णीत वषानो। ताहू तें विरुद्ध पहचानो ।।३८७।।

हरि धामादि नित्य जो माने। दासी दास सत्य पहचाने ।।
अद्वितीय शंकर निर्णीत। तातें क्यों न होइ विपरीत ।।३८८।।

अैसें जो कोऊ शंका आनै। सो विचार विन वृथा वषानें ।।
जातें सफल अर्थ के मांही। श्रुति तात्पर्य अन्यथा नांहीं ।।३८९।।

वेदाध्ययन करौ रे तात। सफल अर्थ वोधक श्रुति जात ।।
इम सदर्थ वोधक विधि पाइ। वेद सफल वोधक सुखदाइ ।।३९०।।

वेद अर्थ वक्ता आचार्य। विफल अर्थ क्यौ कहै अनार्य ।।
सम्यक निज मन मांहि विचारो। योग्य होइ सो निश्चय धारो ।।३९१।।

भय द्वितीय सौं निश्चय पावैं। श्रुति स्मृती यह अर्थ दृढ़ावै ।।
ताते भय अरु दुष को कारण। भेद बुद्धि निश्चित निर्द्धारण ।।३९२।।

या विधि विफल दुख को हेत। द्वैत सत्य सभ दूख निकेत ।।
वैष्णव मत आचार वेदवित। तामैं तिन्है होइ क्यौं संमत ।।३९३।।

सभ वैष्णव आचारज जेते। पुनि विरक्त हरि तत्पर तेते ।।
द्वैत सत्व मों तिन कौ रागा। वनैं नही जिन सव जग त्यागा ।।३९४।।

प्रभु धामादि जु सत्य वषाना। भ्रमहि ताहि दृश्यत्व समाना ।।
दृश्यमान कुऊ मृषा न जानैं। ताते द्वैत सत्य ते मानैं ।।३९५।।

हरि धामादि सत्य के कारण। द्वैत सत्य तिन कियौ उचारण ।।
स्वप्नादिक हू सत्य उचारै। पै संमत वे त्तहां न धारैं ।।३९६।।

हरि धामांदि सत्य ही मांही। तिन तात्पर्य अन्यथा नांहीं ।।
सो श्री नानक मत स्वीकार। तिन विरोधता कौ न प्रकार ।।३९७।।

विफल द्वैत के सत्व वषानैं। तात्पर्य संभव नहि मानै ।।
जिह तात्पर्य सु वाक्य अर्थ है। जगमिथ्या को सत्व व्यर्थ है ।।३९८।।

सुई वल्लयाचार्य वषानौ। वेदस्तुति टीका मैं जानौ ।।
ह्यांसो वाक्य विचार प्रयोजन। प्रकट न अर्थ करै संयोजन ।।३९९।।

सत्य वुद्धि करि संतन सेवै। अखिल जगत मैं चित्त न देवैं ।।
भ्रांत मात्र यह जग नहि सांचौ। सांचौ कृष्ण ताहि मन राचौ ।।४००।।

ज्यौं आकाश पुष्प को मानौ। मिथ्या भूत जगत त्यौं जानौ ।।
अधिष्ठान की सत्ता पाइ। सद्भासैं सत कृष्णहि ध्याय ।।४०१।।

भगवत्पूज्य पाद श्री शंकर। जन शंकर आचार्य वाक्यवर ।।
अधिष्ठान श्री विष्णु वतावैं। तहां प्रपंच प्रकल्पित गावैं ।।४०२।।

अधिष्ठान सच्चित सुख रूप। नित्य आत्म श्री विष्णु अनूप ।।
विविध व्यक्त कल्पित ता मांही। ज्यौं भूखन हाटक मैं आही ।।४०३।।

अैसे साक्षात निज मुख सो। कही प्रक्रिया स्वीय ग्रन्थ मो ।।
औरों वहु सुस्तोत्रन मांहीं। सच्चित विष्णु कह्यौ सब ठांही।।४०४।।

भगवत पूज्यपाद मत मांहीं। कृष्ण मृषात्व कह्यौ कछु नाहीं ।।
भ्रमतैं द्वेष दुष्ट मति कहै। तिन मत भगवान्नदा लहै ।।४०५।।

मृषा विराडादिक जो कहे। सो तो पंचभूत निर्मए ।।
सच्चित सुख मूरति भगवान। अधिष्ठान ही कियौ वषान ।।४०६।।

दृश्यत्वादि साम्य करि मानैं। मृषा कृष्ण सो मूढ़ अयानैं ।।
सूक्ष्म इकाग्र वुद्धि कर भासै। सूक्ष्म दृशिन इम ब्रह्म प्रकासै ।।४०७।।

इत्यादिक श्रुति वहुत वषानैं। दर्शन योग्य ब्रह्म कौं मानैं ।।
वृत्ति ज्ञान आवरण विनाशैं। स्वप्रकास चित् आपुहि भासैं ।।४०८।।

सो हरि भान इष्ट ही माना। चिद्भास्यत्व न अन्य समाना ।।
जातैं मृखा रूप करि शंका। मूढ बुद्धि कोऊ देइ कहों का ।।४०९।।

विद्यारण्य स्वामि जे अहै। उत्तम सम्प्रदाय वित कहैं ।।
सत हू के जो नाम रूप दो। कलिपत हैं तौ कहो कहां सौ ।।४१०।।

अधिष्ठान विन भ्रम नहि होई। देषा सुना वने नहि सोई ।।
नाम रूप सीपी के दोऊ। नहि कलिपत सीपी मैं सोऊ ।।४११।।

त्यौ सत नाम रूप सत मांही । कल्पित कहै संभवै नांही ।।
अधिष्ठान पुन असत न वनैं । कहां कल्पना वाकी भनैं ।।४१२।।

भगवद्धाम उपकारण जेते । भगवद्रूप सुने सब्र तेते ।।
माया को जिह नही निवेश । कहैं स्मृति सो पद अक्लेश ।।४१३।।

जो वैदिक श्रुति निर्णय माने । विफल अर्थ ते नहि सन्माने ।।
हरि धामादि असित जे कहे । कहौ कौंन फल को वे लहै ।।४१४।।

शंकर मती द्वेष नहि मानैं । हरि मैं नित सुस्तव ही ठानैं ।।
कैसैं हरि मृषात्मता कहै । अपनो निज स्वरूप ही लहे ।।४१५।।

दृश्य रूप की समता पाई । सत्य न होहु जगत दुख दाई ।।
ताते किनहूं कहूं उचारा । तामैं अभिप्राय नहि धारा ।।४१६।।

निः फल ही ते ताके मांही । तिनको अभिप्राय है नांहीं ।।
तात्पर्य जब जहां न पावैं । क्यौं तिन वाक्य अर्थ ठहरावै ।।४१७।।

जग मिथ्वात्व वोध के अर्थं । कियौ दृश्य मिथ्यात्व समर्थ ।।
तातें अभिप्राय तिन यही । जग मिथ्या सच्चित हरि सही ।।३१८।।

हरि धामादि सत्य ही जानो । मृषा जगत निश्चय अनुमानो ।।
एक वाक्यता सवकी यातें । नानक मत विरोध नहि तातैं ।।४१९।।

स्वात्मभिन्न कृष्ण ही जपना । मन वाणी करि कर्म जु अपना ।।
हरि के बिना जगत सव स्वप्ना । है यह श्री नानक मत थपना ।।४२०।।

नारायण उपदेशहि पाइ । नदी नीर सै प्रगटे आइ ।।
श्री नानक जप जो उच्चारा । पहले पद का लिषैं विचारा ।।४२१।।

सत्य नाम कर्त्ता पुरुष निर्भव निर्वैर अकाल ।।
मूरति अयोनी सय भं गुरु प्रसाद जप आदि ।।
सच्च युगादि सच्च है भी सच्च नानक होसी भी सच्च ।।

सत्य ज्ञान अनंत उचारा । ब्रह्म तैंत्तरी श्रुति निर्धारा ।।
त य ही सौम्य हतौ इह आदि । छांदोग्यहि श्रुति को सवांद ।।४२२।।

पुंडरीक सन्नयन विशाला। तापनीय को वचन रसाला ।।
सो सत ब्रह्म जगत यह साजैं। आपुहि अनु प्रवृष्टि ह्वै राजैं ।।४२३।।

यह जीवात्म रूप निज धार। करै प्रगट जग नाम अकार ।।
यौ प्रवेश संकल्प विचारा। जीव रूप ह्वै आप पधारा ।।४२४।।

इत्यादिक श्रुति सिद्ध भयौ जो। भयौ ब्रह्म नामहि कर्ता सो ।।
यही अर्थ गुरु के मन भायौ। सत्य नाम कर्त्ता कहि गायौ ।।४२५।।

यह शंका जो कुऊ मन लावैं। नाम रूप कर्त्ता श्रुति गावैं ।।
रूप छोडि कैसें इह भाषा। सत्य नाम कर्त्ता पद भाषा ।।४२६।।

सुन वाचारंभण जु विकार। नाम ध्येय इह सभ संसार ।।
नाम मात्र ही रूप कहायौ। सत्य नाम कर्त्ता ठहरायो ।।४२७।।

भूतन तैं सभ भूत बनाई। पुर रचि तहां वस्यौ सुखदाई ।।
सत्य नाम कर्त्ता पुरुष सो। हरि कर्त्ता हरि ही कारज हो ।।४२८।।

जाते जीव ब्रह्म ही भयौ। भव संसार तहां नहि लह्यौ ।।
भव जु जन्म अथवा संसारा। ता विन सो निर्भव उच्चारा ।।४२९।।

नहीं अन्य याते कोऊ दृष्टा। श्रोता सर्वातम सव स्रष्टा ।।
अन्य होइ तौ वैर वढ़ावैं। ताते हरि निरवैरि कहावैं ।।४३०

जाहि मूर्त्ति को काल न षाही। काल अवच्छेद कहूं नांहीं ।।
विष्णु अकार सुकाल कहायो। इम अकाल मूरति सो गायौ ।।४३१।।

काल मूर्त्ति मैं जग क्षयकार। ऐसैं श्री गीता उच्चार ।।
सो अकाल मूरति भगवान। पुनि अयोनि संभव हरि मानि ।।४३२।।

नही योनि कोऊ तिह कारण। हरि अनादि सभ योनि निवारण।।
नही योनि जग कारण अहै। विष्णु अहेतु यहै श्रुति कहै ।।४३३।।

ब्रह्म अपूर्व कह्यौ पुन अनपर। ताहि न वाहि न पुनि तिह अंतर।।
नहि तिह कार्य्यं न कारन कोई। यह श्रुति कहै स्मृति पुनि सोइ ।।४३४।।

अैसैं भगवत्तम भगवान। जग कारण करि कियौ वखान ।।
पै जो होइ विवेकी कोई। ऐसो ही नहि जानैं सोई ।।४३५।।

जग जन्मादि कर्म के मांही । कहुं कर्तृत्व विष्णु को नांही ॥
कर्तृत्वादि निषेधहि कारण । मायारोपित कियौ उच्चारन ॥४३६॥

अैसैं स्मृति निषेधहि पाई । हरि मूरति आयोनि ही गाई ॥
जो शंका यह आनैं कोऊ । हेत अहेतु बनैं क्यौं दोऊ ॥४३७॥

तुम ते जग जन्मादिक कहैं । यद्यपि अगुण अविक्रिय लहै ॥
ईश ब्रह्म न विरोध प्रकार । माया गुण कृत तुहि उपचार ॥४३८॥

अैसैं श्रीमद् भागवत मांहि । कछु विरोध राख्यौ है नांहि ॥
कार्यं मात्र सब मृषा कहायौ । नहि विरोध युक्तिहु ते पायौ ॥४३९॥

जैसैं कहूं शुक्ति अज्ञान । तहां रजित कल्पित को भान ॥
वस्तु दृष्ट सो उपजो नांहीं । नहीं नाश ताको वा मांही ॥४४०॥

नहीं प्रलय उत्पति न कोऊ । नहि कोऊ वद्ध न साधक होऊ ॥
नहि मुमुक्ष नहि मुक्ति विभेद । यह परमार्थ वषानत वेद ॥४४१॥

आतम रूप जिन आतम न जाना । तिह कल्पित सब विश्व दिषाना॥
ज्ञान भयो तव ही लय भाषा । ज्यौ रसरी अहि जन्म विनासा॥४४२॥

तातें जग यह असत स्वरूप । स्वप्न तुल्य जड पुरु दुख कूप ॥
तुव माया ते उपजि विनासैं । सच्चित तनु सत्तहि सत भासैं ॥४४३॥

इत्यादिक वहु वाक्य वखाने ।श्रुति अरु स्मृति युक्ति अनुमाने ॥
कारण हैं प्रतीति अनुसार । ताते कारण कियौ उचार ॥४४४॥

वस्तु द्दिष्टि कारण नहि वने । ताते गुरु अयोनि तिह भने ॥
सत्य नाम कर्त्ता सो भयो । पुरुष रूप निर्भव पथ लह्यो ॥४४५।

पुनि निरवैर अकाल मूर्ति जो । है अयोनि शय भं कहियै सो ॥
शय आशय घट घट के मांही । भं भासैं द्वितिय कोऊ नाहीं ॥४४६॥

अथवा शय शयनार्थ विचारो । स्वप्न ताहि मन मांहि निहारो ॥
तीनि अवस्था श्रुति नै तीन । कहै स्वप्न सो लह्यौ प्रवीन ॥४४७॥

सभ शय सर्व अवस्था मांहि । सभ व्यापक भासै ता ठांहि ॥
सर्व अवस्था साक्षी जोई । शय भं हरि स्वरूप है सोई ॥४४८॥

एक दैव सभ भूतन गूढ । सभ व्यापक सभ हृदयारूढ ।।
लोकाध्यक्ष सर्व अधिवासो । चित केवल निर्गुन सभ भासी ।।४४९।।

शय पुरुष जिह जिह मैं सोवैं । हरि निवास आस्पद शय होवैं ।।
सूर्य्य चंद्र सभ मांहि प्रकासी । सो हरि शय भं अविनासी ।।४५०।।

सूर्यमं मांहि जो तेज विराजै । अखिल जगत भासक छवि छाजै।।
सूर्य चंद्र मै तेज जु लहा । सो मम तेज कृष्ण इम कहा ।।४५१।।

शय शुषुप्ति अरु कलप के मांही। सर्व वृत्ति लय भए तहां ही ।।
स्व प्रकास चिद्भासक जोई । शय भं स्व स्वरूप हरि सोई ।।४५२।।

पुन शै शव्द लोक भाषा लै । शत असंख्य वाचक प्रसिद्ध है ।।
पारसि भाषा हू मै लहा । वस्तु मात्र बोधक शय कहा ।।४५३।।

सो सभ भासक विष्णु स्वरूप । सै भं शब्द को अर्थ अनूप ।।
सभ भासक सो विष्णु बखाना । वहुत श्रुति स्मृत हू मैं जाना ।।४५४।।

ताहि भानु अनु इह सभ भासैं । स्वतः नही जड वर्ग प्रकासै ।।
तिह भासा यह भासत लोक । या विधि कहैं वहु श्रुति थोक ।।४५५।।

सो सभ भासक विष्णु महान । भास्वर स्व प्रकाश ही जान ।।
सव व्यापक तौहू नहि भासैं । माया करि आवृत न प्रकासै ।।४५६।।

नहि मम रूप और कोउ जानैं । योग माय आवृत न पिछानैं ।।
मैं अव्यक्त मूर्त्ति जग व्यापा । मो विन सर्व नहीं कोऊ आपा ।।४५७।।

श्री गुरु जाहि अनुगृह करैं । ताहि स्वरूप सदा सुस्फुरैं ।।
विद्या आचारज सो पावैं । विनु गुरु नहि परमा गति जावैं।।४५८।।

नवधा भक्ति जाहि हरि मांही । जिम हरि मों तिम श्री गुरु पांही।।
तिह महात्मा कों सुख सरसैं । कहे न कहे अर्थ सभ दरसैं ।।४५९।।

समित पाणि धरि मन विश्वास । श्रोत्रिय पास होइ न उदास ।।
जाइ करै श्रद्धा युत वास । [तौ मिथ्यात्व कौ होइ विनास]।।४६०।।

सत्य नाम कर्ता कर जाप । पुरुष रूप निर्भव मन थाप ।।
पुन निरवैर अकाल मूर्त्ति जो । शय भं स्वप्रकास हरि ही सो ।।४६१।।

गुरु प्रसाद इह है संबोधन। हेतु गर्भ हरि रति पद सोधन ॥
ताते गुरु प्रसाद तैं पायो। तातै जप इह मंत्र सुहायो ॥४६२॥

आदि सच्च सोई पहलैं भयौ। सत ही हुतो यही श्रुति कह्यौ ॥
सुई युगादि सच्च जग कारण। हरि विरंचि आदिक वपु धारन ॥४६३॥

है भी सच्च मध्य है जोई। होसी भी सच आगै वोई ॥
लया धार सोइ हैं सांचा। सब निषेद कीनैं पुन वांचा ॥४६४॥

यह आगैं सद्रूपहि भयौ। ए तादात्म सब जग निर्मयौ ॥
ह्यां नांही किंचन कुछ नाना। इत्यादिक श्रुति करैं बषाना ॥४६५॥

अधिष्ठान सत्ता विन नाहीं। आरोपित सांचौ जग मांही ॥
अधिष्ठान सद्रूप सही है। सो अद्वय हरि एक वही है ॥४६६॥

नारायण गुरु नानक भाषा। जलते निकसि जाय इह आखा ॥
सो इह सर्व वेद को सार। शिष्य भक्त जपि उतरै पार ॥४६७॥

यही अर्थ श्रीमन्नरायण। ब्रह्महि भाषि कियो पारायण ॥
ब्रह्मा ने नारद कों दियो। व्यास पाइ तिहि विस्तर कियो ॥४६८॥

परम गुह्य मैं ज्ञान कहौं सुन। जो विज्ञान सहित मन मै गुन ॥
परम रहस्य अनूपम अर्थ। सर्व अंग पूरण सुसमर्थ ॥४६९॥

जैसो मैं जौ मेरौ भाव। ज्यौ मेरे गुण कर्म स्वभाव ॥
तैसो ही मम तत्वहि ज्ञान। मेरी करुणा तैं तू जान ॥४७०॥

में हो आगें सत इक भयो। यह सत असत कछू नहि रह्यौ ॥
पाछै मैं जग हू मैं भासौं। शेष रहै सो मैं परकाशों ॥४७१॥

विना अर्थ ही के जो भासै। आत्म मांहि पुन नही प्रकासैं ॥
सोई आत्म अविद्या मानौं। ज्यौं प्रभास और तम जानौ ॥४७२॥

जैसैं महा भूत सभ मांही। ऊँच नीच सो भूत लखाहीं ॥
अनुगत नही तिन अनुगत अहीं। त्यौ तिन मै मैं तिन मैं नहीं ॥४७३॥

यही अर्थ मन मैं अवगाहै। आत्म तत्त्व जो जान्यौ चाहै ॥
करि अन्वय व्यतरेक निहारे। जो सर्वदा सदा सो धारै ॥४७४॥